अभिनव कृषि

वर्ष–5 अंक–3 सितम्बर–2023 रजि. नं. : RAJHIN/2021/81869

विशेषांक

● रबी फसल उत्पादन तकनीक ● सब्जी उत्पादन तकनीक ● बीज उत्पादन तकनीक ● संरक्षित खेती

प्रसार शिक्षा निदेशालय
कृषि विश्वविद्यालय, कोटा (राजस्थान)–324001

77 वां स्वतंत्रता दिवस समारोह
15 अगस्त, 2023
कृषि विश्वविद्यालय, कोटा

कृषि विश्वविद्यालय, कोटा

इफको नैनो डीएपी (तरल)
₹600/- | 500 मिली
बीज अंकुरण दर बढ़ाए
जड़ों का करे बेहतर विकास
खेती की लागत कम करे
रसायनिक उर्वरकों का प्रयोग घटाए
जल, मृदा एवं वायु प्रदूषण कम करे
IFFCO
NANO DAP
LIQUID

#IFFCONanoUrea
IFFCO
इफको नैनो यूरिया तरल
पेश है किसानों के लिए दुनिया का पहला नैनो यूरिया!
लागत कम करने में सहायक
मिट्टी की गुणवत्ता को बढ़ाए
पौधों के पोषण में सहयोगी
किसानों की आय में सुनिश्चित वृद्धि
फसल उपज को बढ़ाए
पारंपरिक यूरिया से सस्ता
IFFCO
NANO UREA
LIQUID
FOLLOW US:
IFFCO
INDIAN FARMERS FERTILISER COOPERATIVE LIMITED
IFFCO Sadan, C-1 District Centre, Saket Place, New Delhi - 110017, INDIA
Phones : 91-11-26510001, 91-11-42592626. Website : www.iffco.coop
इण्डियन फारमर्स फर्टिलाइजर कोआपरेटिव लिमिटेड
जयपुर तृतीय तल, नेहरू सहकार भवन, जयपुर, राजस्थान, राजस्थान 302001
दूरभाष : 0141-2740660, 2740307, 2740307

रजि. नं. : RAJHIN/2021/81869 पंजीयक समाचार पत्र भारत सरकार पोस्टल पंजीकृत संख्या कोटा/323/2023–25

कृषि प्रौद्योगिकी प्रबन्धन एवं गुणवत्ता सुधार केन्द्र

(Agriculture Technology Management and Quality Improvement Centre -ATMQIC)

प्रसार शिक्षा निदेशालय

कृषि विश्वविद्यालय, कोटा

स्थापना के उद्देश्य

- नवोन्मेषी कृषि प्रौद्योगिकी का प्रभावी हस्तानान्तरण
- किसान कॉल सेन्टर की स्थापना
- कृषि तकनीकी संग्रहालय की स्थापना
- कृषि संसाधन केन्द्रों की स्थापना
- कृषि आदान व उत्पाद बिक्री केन्द्र की स्थापना
- कृषक उपयोगी साहित्य प्रकाशन
- विश्वविद्यालय द्वारा विकसित विभिन्न तकनीकियों का संकलन एवं प्रदर्शन

किसान कॉल सेन्टर
0744-2662700

स्वामी प्रकाशक : डॉ. एस.के. जैन, निदेशक, प्रसार शिक्षा निदेशालय
कृषि विश्वविद्यालय, कोटा
Website : https://aukota.org
Email: abhinavkrishi.aukota@gmail.com
दूरभाष : **0744- 2326727**

पुस्त प्रेष्य _____

स्वामी निदेशक प्रसार शिक्षा, कृषि विश्वविद्यालय, कोटा प्रकाशक डॉ. एस.के. जैन, मुद्रक श्री जमील अहमद, मैसर्स डायमण्ड प्रिन्टर्स, शॉप नं. 2, काली मस्जिद के पास, नई धानमण्डी, कोटा से मुद्रित एवं निदेशक, प्रसार शिक्षा निदेशालय, कृषि विश्वविद्यालय, बोरखेड़ा, कोटा, राज. से प्रकाशित, संपादक डॉ.एस.के. जैन

अभिनव कृषि

वर्ष–5 अंक–3 सितम्बर–2023 रजि. नं. : RAJHIN/2021/81869

संरक्षक

डॉ. अभय कुमार व्यास
कुलपति, कृषि विश्वविद्यालय, कोटा

सम्पादक मण्डल

डॉ. एस.के. जैन
निदेशक प्रसार शिक्षा
प्रधान संपादक एवं प्रकाशक

डॉ. के.सी.मीना
सह आचार्य (प्रसार शिक्षा)
संपादक एवं समन्वयक

डॉ. राकेश कुमार बैरवा
सह आचार्य (शस्य विज्ञान)
संपादक

डॉ. डी.के. सिंह
आचार्य (उद्यान विज्ञान)
सह–संपादक

डॉ. महेन्द्र सिंह
आचार्य (पशुपालन)
सह–संपादक

डॉ. सेवाराम रूण्डला
विषय विशेषज्ञ (मृदा विज्ञान)
सह–संपादक

श्रीमती गुंजन सनाढ्य
विषय विशेषज्ञ (गृह विज्ञान)
सह–संपादक

सुश्री सरिता
तकनीकी सहायक
सह–संपादक

मनोनीत सलाहकार मण्डल

डॉ.प्रताप सिंह
निदेशक, अनुसंधान

डॉ. आई.बी. मौर्य
अधिष्ठाता, उद्यानिकी एवं वानिकी महाविद्यालय, झालावाड़

डॉ. एम.सी. जैन
अधिष्ठाता, कृषि महाविद्यालय, कोटा

डॉ. मुकेश चन्द गोयल
निदेशक, प्राथमिकता, निगरानी एवं मूल्यांकन

सदस्यता शुल्क

- ☞ त्रैमासिक (प्रति अंक) 30 रू.
- ☞ वार्षिक (चार अंक) 100 रू
- ☞ आजीवन (15 वर्ष)1000 रू.

विज्ञापन दरें

(i)	अन्तिम सम्पूर्ण (रंगीन)	रू. 10,000/-
(ii)	प्रथम एवं अन्तिम पृष्ठ के पीछे (रंगीन)	रू. 6,000/-
(iii)	अन्तिम आधा पृष्ठ (रंगीन)	रू. 5,000/-
(iv)	प्रथम एवं अन्तिम पृष्ठ के पीछे आधा पृष्ठ (रंगीन)	रू. 3,000/-
(v)	अन्दर का सम्पूर्ण पृष्ठ (श्याम–श्वेत)	रू. 4,000/-
(vi)	अन्दर का आधा पृष्ठ (श्याम–श्वेत)	रू. 2,000/-

नोट : यदि विज्ञापन वर्ष के सभी चार अंकों के लिए दिया जाता है तो उपरोक्त दरों में 25 प्रतिशत की कमी की जायेगी।

सदस्यता एवं नवीनीकरण हेतु

खाता धारक	: DEE, Agriculture University, Kota
बैंक	: ICICI BANK, Nayapura, Kota
खाता संख्या	: 687801700345
IFSC	: ICIC0006878

लेख एवं सुझाव भेजने का पता

"अभिनव कृषि"
प्रसार शिक्षा निदेशालय, कृषि विश्वविद्यालय, कोटा
बोरखेड़ा, बारां रोड़ कोटा (राजस्थान) – 324001
Email: abhinavkrishi.aukota@gmail.com दूरभाष : 0744- 2326727

प्रकाशक: प्रसार शिक्षा निदेशालय, कृषि विश्वविद्यालय, कोटा
मुद्रक : डामयण्ड प्रिन्टर्स, नई धानमण्डी, कोटा (राज.) मो. 9414231079

नोट– "अभिनव कृषि" में आलेख प्रकाशन हेतु लेखकों का सदस्य होना अनिवार्य है तथा लेखों में व्यक्त विचारों, जानकारियों, आंकड़ों आदि के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी है।

डॉ. एस.के. जैन
निदेशक (प्रसार शिक्षा)

Directorate of Extension Education
प्रसार शिक्षा निदेशालय
AGRICULTURE UNIVERSITY, KOTA
कृषि विश्वविद्यालय, कोटा
Borkhera, Baran Road, Kota 324 001 (Raj.)
बोरखेडा, बारां रोड, कोटा 324001 (राज.)

प्रधान संपादक की कलम से.....

भारत एक कृषि प्रधान देश है एवं कृषि क्षेत्र का देश के समग्र व सतत् विकास में महत्त्वपूर्ण स्थान है। साथ ही अधिकांश भारतीय आबादी की आय का मुख्य स्रोत कृषि है, जो सकल घरेलू उत्पाद में महत्त्वपूर्ण योगदान रखती है। हमारा देश कृषि गतिविधियों पर अत्यधिक निर्भर है, क्योंकि इसमें भूमि के विशाल क्षेत्र का उपयोग कृषि क्षेत्र हेतु किया जाता है। अतः कृषि की वृद्धि सुनिश्चित करना और भी महत्वपूर्ण हो जाता है। साथ ही कृषि के लिए अत्याधुनिक व नवीनतम कृषि तकनीकों का विकास कर इन्हें किसानों के लिए अन्तिम छोर तक पहुंचाने की पहल करनी चाहिए ताकि किसान समुदाय इनसे लाभ उठा सकें जो बदले में अच्छे नतीजे पैदा कर सकते है। कृषि व इससे संबंधित गतिविधियों पर ध्यान केंद्रित करने से हमारे राष्ट्र की वृद्धि अधिक होगी तथा चहुमुखी विकास होना सुनिश्चित हो जाता है।

कृषि में अंधाधुंध व असंतुलित मात्रा में कृत्रिम रूप से संश्लेषित रसायनों व उर्वरकों के अनुप्रयोगों से मृदा, मानव व पशु स्वास्थ्य पर विपरित प्रभाव पड़ रहा है। इसलिए नवीनतम कृषि तकनीकों को इन सभी के स्वास्थ्य सुधार के प्रति समर्पित किया जाना चाहिए ताकि स्थानीय उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों का न्यायसंगत उपयोग होने के फलस्वरूप टिकाऊ कृषि उत्पादन प्राप्त हो सके। साथ ही किसान हित में विभिन्न लाभकारी योजनाओं को किसानों के विकास के लिए कृषि आधारित गतिविधियों के साथ एकीकृत किया जा सकता है। खेती के तरीके सुधारने व उनके ज्ञान में बढ़ोत्तरी कर कौशल को बेहतर बनाने के लिए नवीनतम तरीके सीखने के लिए उन्हें समय पर उचित मार्गदर्शन व कृषि सलाह दिया जाना चाहिए। कृषि न केवल हमारे देश की प्रमुख गतिविधियों में से एक है बल्कि यह सबसे शक्तिशाली गतिविधियों में से भी एक है। इसके महत्व की अनदेखी नहीं की जा सकती क्योंकि यह सकल घरेलू उत्पाद की उच्च दर से संबंधित है। अतः एकीकृत कृषि प्रणाली के साथ मृदा स्वास्थ्य प्रबंधन, जल व मृदा संरक्षण तकनीक, कम लागत में अधिक आय देने वाली फसलों को खेती–किसानी में शामिल करना चाहिए ताकि किसनों को वर्ष भर आमदनी प्राप्त होना सुनिश्चित हो सके।

अभिनव कृषि के इस अंक में वैज्ञानिकों एवं विषय विशेषज्ञों द्वारा लिखित आलेखों को शामिल किया गया है, जिनके माध्यम से रबी फसलों की वैज्ञानिक खेती, सब्जियों की खेती, संरक्षित खेती, गुणवत्तायुक्त बीज उत्पादन की जानकारी देने का प्रयास किया गया है।

मैं इस पत्रिका के सभी लेखक गणों, सम्पादक मण्डल व सलाहकार मण्डल के सभी सदस्यों को इस अंक के प्रकाशन के लिए हार्दिक बधाई तथा सभी किसान भाईयों को आगामी रबी मौसम में अच्छे फसलोत्पादन प्राप्त करने हेतु हार्दिक शुभकामनाऐं देता हूँ।

(एस.के. जैन)

अभिनव कृषि

वर्ष–5 अंक–3 सितम्बर–2023

अनुक्रमणिका

क्र.सं.	विषय विवरण	पृष्ठ संख्या
1.	पार्थेनोकार्पिक खीरे की संरक्षित खेत राजेश कुमार शर्मा, राकेश कुमार यादव, राजेश कुमार एवं अर्जुन कुमार वर्मा	1-2
2.	भिंडी की खेती: किसानों के लिए आय का स्रोत अशोक चौधरी, योगेश कुमार शर्मा, उदल सिंह एवं एस.के.बैरवा	3-4
3.	मेथी उत्पादन की उन्नत प्रौद्योगिकी गुरशरण सिंह, राकेश कुमार यादव, प्रीति वर्मा एवं यामिनी टाक	5-6
4.	ग्लेडियोलस की उन्नत खेती रिशिका चौधरी, अनुज कुमार एवं अरविंद सिंह तेतरवाल	7-9
5.	पपीता के रोग व उनका नियत्रंण चतुर्भुज मीना, रामकिशन मीना, डी एल यादव एवं चिराग गौतम	10-11
6.	हाइड्रोजैल का शुष्क क्षेत्रों में महत्व अनुज कुमार एवं जे. पी. तेतरवाल	12-13
7.	आधुनिक खेती में फसल विविधीकरण का महत्त्व देवी लाल किकरालियाँ, उमा नाथ शुक्ल, अनुज कुमार एवं विजयलक्ष्मी यादव	14-15
8.	गेहूँ मे गुणीय बीजोत्पादन तकनीक आर. के. महावर, हनुमान सिंह, उदिती धाकड एवं पूनम फोजदार	16-18
9.	गाजर घास एक अत्यंत हानिकारक खरपतवार बनवारी लाल जाट एवं अक्षय चितौडा	19
10.	कैसे तैयार करे नीम खाद एवं इसका खेती में महत्व अनुज कुमार, देवी लाल किकरालियाँ एवं नरेन्द्र पादड़ा	20-21
11.	अलसी : एक स्वास्थ्यवर्धक खजाना पूजा शर्मा	22
12.	मटर के प्रमुख रोग एवं उनका प्रबंधन हनुमान सिंह एवं राजेश कुमार महावर	23-24
13.	जैव संवर्धित किस्में : कुपोषण से निजात पाने का टिकाऊ तरीका खजान सिंह, भूरी सिंह, वर्षा गुप्ता एवं राजेश कुमार	25-26
14.	उन्नत बीज उत्पादन मे अलगाव (पृथक्करण) दूरी एवं इसका महत्व राजेश कुमार शर्मा, राजेश कुमार महावर, अर्जुन कुमार वर्मा एवं प्रताप सिंह	27-29
15.	गोंद कतीरा: स्रोत और उपयोगिता पूजा कुमारी, कनिका उपाध्याय, अंजू एस. विजयन, एवं एस.बी.एस.पांडेय	30-31
16.	औषधीय पौधों में जैविक खेती का महत्व रामबाबू चौधरी, कनिका उपाध्याय, अंजू एस. विजयन एवं एस.बी.एस.पांडेय	32-33

पार्थेनोकार्पिक खीरे की संरक्षित खेत

राजेश कुमार शर्मा, राकेश कुमार यादव, राजेश कुमार एवं अर्जुन कुमार वर्मा
यांत्रिक कृषि फार्म और कृषि महाविद्यालय, उम्मेदगंज, कोटा

खीरा (*कुकुमिस सैटिवस* एल.) पोषण के साथ–साथ आर्थिक दृष्टि से भी महत्वपूर्ण सब्जी फसलों में से एक है। यह विकसित दुनिया में संरक्षित परिस्थितियों में उगाई जाने वाली सबसे पसंदीदा सब्जियों में से एक है। सलाद पकवान, सैंडविच, पिज्जा की तैयारी आदि में इसके लोकप्रिय उपयोग के कारण इसकी मांग पूरे वर्ष भर होती है। भारत में इसे पारंपरिक रूप से जायद और खरीफ मौसम में उगाया जाता है। हालांकि, उच्च मूल्य वाली कम मात्रा वाली फसल होने के कारण, ग्रीन हाउस में गैर–मौसमी फसल के रूप में वाणिज्यिक पैमाने पर इसका दोहन उत्पादकों को अच्छी आय उत्पन्न कर सकता है।

किस्में

पार्थेनोकार्पिक खीरा उत्तर भारत के हालात में संरक्षित खेती के तहत अच्छा परिणाम देने वाला साबित हुआ है। निम्नलिखित किस्मों को पॉलीहाउस की स्थिति में सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है:

- कियान, इसाटिस (ननहेम)
- काफ्का (सिंजेंटा)
- मल्टीस्टार, डेल्टास्टार (सीईवी)
- सनस्टार, किंगस्टार, फाल्कन स्टार (रिजवान)
- वाई 225, 52–32 (युकसेल)
- हिल्टन (सिमिलस फिटो)

नर्सरी तैयार करना

सीडलिंग को 98 सेल प्रोट्रे में उगाया जाता है जिसमें तल पर जल निकासी छेद होते हैं। मीडिया के रूप में कोकोपीट, वर्मीक्यूलाइट और पेर्लाइट का उपयोग 3:1:1 के अनुपात में किया जाता है। प्रत्येक सेल में एक बीज लगाया जाता हैं। उभरते हुए पौधों को कॉपर ऑक्सीक्लोराइड (3 ग्राम/लीटर) के घोल से ड्रेंचिग कर दिया जाता है। अंकुरण के 15 दिन बाद पौध को 0.2 प्रतिशत, 19:19:19 (एन:पी:के:) प्लस ट्रेस तत्वों से भीगकर पोषण प्रदान किया जाता है। कीट के संक्रमण को रोकने के लिए ऐसफेट (0.75 ग्राम/लीटर) या इमिडाक्लोप्रिड (0.03 मिली/लीटर) का उपयोग करके छिड़काव किया जाता है। रोपण के दिन पौधों को गिरने से बचाने और बेहतर स्थापना के लिए कार्बेन्डाजिम या रिडोमिल (0.1 प्रतिशत) की ड्रेंचिंग आवश्यक है।

क्यारी की तैयारी

क्यारी को समतल करना महत्वपूर्ण है। बेड से बेड की दूरी 60 सेमी होनी चाहिए। बेड की चौड़ाई 100 सेमी होनी चाहिए। क्यारी की ऊँचाई 20 सेमी, पौधे से पौधे की दूरी 30 सेमी और पंक्ति से पंक्ति की दूरी 45 सेमी होनी चाहिए।

क्यारीयों का सोलराइजेशन

मिट्टी की तैयारी और वर्मीकम्पोस्ट के प्रयोग के बाद क्यारीयों का कीटाणुशोधन किया जाता है। मिट्टी को फॉर्मेलिन 4 प्रतिशत घोल 4 लीटर प्रति वर्गमीटर की दर से अच्छी तरह से गीला किया जाता है। सतह को सफेद और पारदर्शी पॉलिथीन शीट (100 माइक्रोन मोटाई) से ढक दिया जाता है। इस प्रक्रिया के दौरान तापमान 60–70 डिग्री सेल्सियस तक बढ़ जाता है। यह प्रक्रिया खरपतवार, हानिकारक जीवों, कवक बीजाणुओं, बैक्टीरिया और सूत्रकृमि को मारने में मदद करती है।

उर्वरकों का प्रयोग

अच्छी तरह से सड़ी हुई जैविक खाद को 10–15 किलो प्रति वर्ग मीटर क्यारी की दर से फ्यूमिगेशन से पहले डाल कर अच्छी तरह मिलाया जाता है। 19:19:19: (एन:पी:के:) युक्त वाणिज्यिक उर्वरक धूमन के बाद बढ़ते हुए क्यारियों पर 7 ग्राम प्रति वर्गमीटर की दर से लगाया जाता है।

ड्रिप लाइन बिछाना

पौध रोपण से पहले क्यारी पर प्रत्येक पंक्ति में 2 एलपीएच के डिस्चार्ज वाले 30 सेमी इंटरमीटर दूरी के साथ एक इनलाइन ड्रिप लेटरल रखी जाती है। रोपण से पहले उत्सर्जक से पानी के एक समान निर्वहन की जांच के लिए ड्रिप सिस्टम चलाया जाता है।

पलवार बिछाना

ब्लैक/सिल्वर यूवी स्टेबलाइज्ड पॉलीइथाइलीन मल्च फिल्म 1.2 मीटर चौड़ाई वाली 100 माइक्रोन (400 गेज) मोटाई का उपयोग रोपण बेड को कवर करने और मिट्टी में दफन करके शीट के किनारों को सुरक्षित करने के लिए किया जाता है। अनुशंसित फसल की दूरी पर एक तेज पाइप का उपयोग करके फिल्म पर 7–8 सेमी व्यास के छेद बनाए जाते हैं।

अंतर दूरी

संरक्षित खेती में खीरा 60 से.मी. x 30 से.मी. की दूरी पर लगाया जाता है।

पौध रोपण

एक बेड पर खीरे की दो कतारें लगाई जाती हैं। अंकुरों को पंक्ति से पंक्ति के साथ युग्मित पंक्ति पैटर्न में और पौधे से पौधे की दूरी को क्रमशः 45–60 सेमी और 30 सेमी की दूरी पर जिग–जैग रोपण के साथ रोपित किया जाना चाहिए (मतलब दूसरी पंक्ति के पौधों को केंद्र में रखा जाना चाहिए और पहली पंक्ति के पौधों के समानांतर)। रोपाई के लिए 20–25 दिन की आयु के 8–10 सेमी ऊंचाई के साथ 4–5 पत्ते वाले स्वस्थ और रोग मुक्त पौधो का उपयोग किया जाता है। पौध सर्दी के मौसम में 28–30 दिनों के भीतर और गर्मी के मौसम में 15–18 दिनों के भीतर रोपाई के लिए तैयार हो जाते हैं। पौध रोपण का इष्टतम समय जुलाई–अगस्त, अक्टूबर–नवंबर और जनवरी–फरवरी हैं।

सिंचाई

रोपाई के 10 दिन बाद ड्रिप सिंचाई शुरू कर दी जाती है। फसल की आवश्यकता और मौसम की स्थिति के आधार पर प्रतिदिन 2 से 3 लीटर पानी/एम2/दिन की आपूर्ति के लिए ड्रिप सिंचाई प्रदान की जाती है।

फर्टिगेशन

ड्रिप फर्टिगेशन के माध्यम से पौधों को निम्नलिखित पानी में घुलनशील उर्वरक संयोजन प्रदान किया जाता है। सप्ताह में दो बार फर्टिगेशन दिया जाता है।

रोपण के दिनों के बाद	एन.पी.के.	खुराक (ग्राम/वर्ग मीटर)
0–14 दिन	19–19–19	500
14–35 दिन	13–00–45	200
	46–00–00	100
35–14 फसल अंत तक	13–00–45	500
	46–00–00	150

प्रूनिंग और ट्रेनिंग

पौधों को ऊपर की ओर प्रशिक्षित किया जाता है ताकि मुख्य तने को पॉलीथिन सुतली के साथ ओवरहेड तार पर चढ़ने दिया जाए। सभी पार्श्वों और फलों को मुख्य तने पर जमीन के स्तर से 30 सेमी ऊपर तक हटा देना चाहिए। फूल और फलों के उत्पादन को बढ़ावा देने और पर्याप्त हवा की आवाजाही की अनुमति देने के लिए पौधे को एक एकल तने और ऊर्ध्वाधर तारों के साथ प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है ताकि एक इष्टतम छतरी बनाए रखा जा सके जो अधिकतम प्रकाश को रोक सके। यदि एक ही बार में बहुत से फलों को सेट किया जाता है, तो विकृत और गैर–विपणन योग्य छोटे फलों से बचने के लिए फलों को हटा देना चाहिए। गुच्छों में बनने पर ऐसे फलों को यथाशीघ्र हटा देना चाहिए। कमजोर और अनुत्पादक पार्श्व शाखाओं को हटा दिया जाना चाहिए।

खीरे की फसल में प्रूनिंग और ट्रेनिंग की क्रिया

❋❋❋

डीलीफिंग

पुराने पत्ते जो नई वृद्धि से छायांकित होते हैं या जमीन की सतह को छूते हैं, फंगल संक्रमण और कीट संचय को कम करने के लिए समय–समय पर हटा दिए जाते हैं। विकास के किसी भी स्तर पर पत्तियों को तने पर लगभग 1.5 मीटर की लंबाई तक बढ़ते हुए सिरे से रखा जाता है।

कटाई और उपज

रोपाई के 25–30 दिनों के बाद फूल आना शुरू हो जाते हैं। अगस्त/सितंबर में बोई गई फसल के 40–45 दिनों के बाद फल तुड़ाई के लिए तैयार हो जाते हैं जबकि जनवरी में बोई गई फसल बोने के 60 दिन बाद पहली तुड़ाई तक होती है। अगस्त/सितंबर में खीरा की औसत उपज 300 क्विंटल प्रति एकड़ और जनवरी में बोई गई फसल के लिए 400 क्विंटल प्रति एकड़ है। संरक्षित खेती के तहत पूरे वर्ष के लिए बढ़ती अवधि को बढ़ाया जा सकता है और औसत ताजे फल की उपज 35 किलो/वर्ग मीटर तक पहुंच सकती है।

संरक्षित स्थिति में खीरे की फसल में फल लगना

रोग और कीट प्रबंधन

- **बुवाई से पहले**
  1. असली स्रोत से ही बीज खरीदें।
  2. नर्सरी क्यारियों को बुवाई से 20 दिन पहले 4 प्रतिशत फॉर्मेलिन घोल 4 लीटर प्रति वर्गमीटर से उपचारित करें।
  3. बीजों को थीरम 75 डब्ल्यूपी या हेक्साकैप 75 डब्ल्यूपी (3 ग्राम/किग्रा बीज) से उपचारित करें।
- **रोपण के दौरान**
  1. रोगमुक्त पौध हमेशा रोपनी चाहिए।
- **रोपण के बाद**
  1. पौधों को छेद के बीच में रोपें और इस बात का ध्यान रखा जाना चाहिए कि पौधे मल्चिंग शीट को न छुएं।
  2. अल्टरनेरिया रोगों के प्रबंधन के लिए रोपाई के 40 दिनों के बाद 10–15 दिनों के अंतराल पर डाइथेन एम–45 (2 ग्राम/लीटर पानी) या ब्लिटोक्स–50 या फाइटोलन (3 ग्राम/लीटर पानी) की 3–4 स्प्रे करें।
- **फलने की अवस्था**
  1. फ्रूट रोट या लेट ब्लाइट के नियंत्रण के लिए रिडोमिल एमजेड (2.5 ग्राम/लीटर पानी) के 2 स्प्रे 10–15 दिनों के अंतराल पर और उसके बाद हेक्साकैप (2.5 ग्राम/लीटर पानी) या ब्लिटोक्स 50 (3 ग्राम/लीटर पानी) के छिड़काव करें।) या बोर्डो मिश्रण (कॉपर सल्फेट 800 ग्राम + चूना 800 ग्राम + 100 लीटर पानी)।
  2. रोगग्रस्त, सड़े हुए फलों और रोगग्रस्त पौधों को तोड़कर नष्ट कर देना चाहिए।

भिंडी की खेती: किसानों के लिए आय का स्रोत

अशोक चौधरी, योगेश कुमार शर्मा, उदल सिंह एवं एस.के.बैरवा
राजस्थान कृषि अनुसंधान संस्थान-दुर्गापुरा जयपुर

किसान भाई भिण्डी की उन्नत खेती कर अधिक लाभ कमा सकते हैं। भिण्डी के फलों का प्रयोग सब्जी के रूप में किया जाता है। इसमें विटामिन, कैल्सियम, पौटेशियम खनिज लवण, आयोडीन अन्य तत्व प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं। इसे आर्युवेद में वीर्यवर्धक माना गया है तथा किडनी में पथरी के ईलाज में इसका उपयोग लाभदायक होता है। भूखे पेट भिण्डी का सेवन स्वास्थ्य वर्धक होता है। भिण्डी की रेशे सहित जड़ों के पाऊडर को शक्कर के साथ सेवन से महिलाओं में श्वेत प्रदर में फायदा होता है। इसकी जड़ों व तने का उपयोग चीनी साफ करने में किया जाता है। फलों एवं रेशेदार डंठलों का उपयोग कागज व कपड़ा उद्योग में भी किया जाता है।

जलवायु : भिण्डी को उगाने के लिए लम्बे समय तक गर्म मौसम की आवश्यकता पड़ती है। इसकी खेती मुख्यतः ग्रीष्म तथा वर्षा ;तु में की जाती है। इसके अच्छे अंकुरण के लिए तापमान 29 डिग्री सेंटीग्रेड से अधिक होना चाहिए। यदि दिन का तापमान 42 डिग्री सेंटीग्रेड से अधिक हो जाता है तो फूल झड़कर गिरने लगते हैं। अधिक शीत हानिकारक होती है।

भूमि : सामान्यतया भिण्डी की खेती सभी प्रकार की भूमि में की जा सकती है, परन्तु अधिक उत्पादन प्राप्त करने हेतु कार्बनिक खाद युक्त दोमट मिट्टी होनी चाहिए। भूमि को 5–6 जुताई हल द्वारा कर, खेती पूर्व डण्ठल, कचरे आदि से रहित कर देना चाहिए। भिण्डी के लिए उपयुक्त पी.एच. 6.0 से 6.8 है।

उन्नत किस्में

वर्षा उपहार : यह प्रजाति पीत शिरा मोजेक वायरस रोग रोधी है। पौधे की ऊँचाई 90–120 से.मी. तथा पत्तियों का रंग गहरा हरा होता है। वर्षा ऋतु में 47 दिन बाद फल आ जाते हैं तथा फूल आने के 7 दिन बाद फल तुड़ाई हेतु तैयार हो जाते हैं। फल 4–5 वी गांठ से आने लग जाते हैं तथा उपज 90–110 क्विंटल प्रति हैक्टर होती है। यह किस्म पंजाब, हरियाणा, उत्तरप्रदेश तथा राजस्थान में उपयुक्त पाई गई है।

पूसा ए–4 : यह किस्म बुवाई से 45 दिन बाद तुड़ाई योग्य हो जाती है। फल 12–15 सें.मी. लम्बे होते हैं तथा इस किस्म की प्रति हैक्टर पैदावार 120–150 क्विंटल पाई गई है। यह प्रजाति वर्षा तथा गर्मियों दोनों समय में उगाई जाती है।

अर्का अनामिका : यह किस्म पीत शिरा मोजेक विषाणु रोधी है। इसके पौधे सीधे, शाखा युक्त 120–150 से.मी. ऊँचाई वाले होते हैं। फल रोम रहित, मुलायम, गहरे हरे तथा 5–6 धारियों वाले होते हैं। फलों का डंठल लम्बा होने से तुड़ाई आसानी से की जा सकती है। उत्पादन 120–150 क्विंटल/हैक्टर होता है।

हिसार उन्नत : यह किस्म 100–110 से.मी. ऊँचाई तथा 3–4 शाखाओं युक्त हरे रंग की पत्तियाँ होती हैं तथा पौधे में जड़ पास–पास होती है। पहली तुड़ाई 45–46 दिन बाद शुरू हो जाती है। इसकी औसतन उपज 120–130 क्विंटल/हैक्टर होती है। यह पीत शिरा मोजेक वायरस के प्रति अवरोधी है।

बी.आर.ओ–6 : यह किस्म पीत शिरा मोजेक एवं प्रारम्भिक पत्ति मोड़क विषाणु से पूर्णतया अवरोधी है। इसमें फल 37–40 दिन बाद छठवे गांठ पर आ जाते हैं तथा पैदावार 135 क्विंटल प्रति हैक्टर गर्मी की फसल में तथा 260 क्विंटल प्रति हैक्टर वर्षा की फसल में होती है।

पंजाब नंबर 13: पंजाब कृषि विश्वविद्यालय, लुधियाना द्वारा विकसित। यह वसंत के साथ–साथ गर्मियों में भी खेती के लिए उपयुक्त है। फल हल्के हरे रंग के तथा मध्यम आकार के होते हैं। यह पीली शिरा मोजेक वायरस के प्रति संवेदनशील है।

पंजाब पद्मिनी: पंजाब कृषि विश्वविद्यालय, लुधियाना द्वारा विकसित। फल तेजी से बढ़ने वाले, बालों वाले और गहरे हरे रंग के होते हैं। बुआई के 55–60 दिनों के भीतर कटाई के लिए तैयार हो जाती है। यह पीली शिरा मोजेक वायरस के प्रति सहनशील है। 40–48 क्विंटल प्रति एकड़ की औसत उपज देता है।

पंजाब 7: यह पीली शिरा मोजेक वायरस, जैसिड और बॉल वर्म के प्रति प्रतिरोधी है। फल गहरे हरे, मध्यम आकार के होते हैं। 40 क्विंटल प्रति एकड़ की औसत उपज देता है।

पंजाब 8: पूसा सावनी से विकसित। फल गहरे हरे रंग के और कटाई के समय 15–16 सेमी लंबे होते हैं। यह पीली शिरा मोजेक वायरस के प्रति सहनशील और फल छेदक के प्रति प्रतिरोधी है।

पंजाब सुहावनी: इसकी औसत उपज 49 क्विंटल प्रति एकड़ है। इसके फल गहरे हरे रंग के होते हैं और यह पीला मोजेक वायरस के प्रति सहनशील है।

अन्य राज्यों की किस्में

पूसा महाकाली: नई दिल्ली द्वारा विकसित। इसके फल हल्के हरे रंग के होते हैं।

परभणी क्रांति : फल मध्यम लंबे और अच्छी गुणवत्ता वाले होते हैं। यह पीली शिरा मोजेक वायरस के प्रति सहनशील है। 120 दिनों में फसल तैयार हो जाती है। 40 से 48 क्विंटल प्रति एकड़ की औसत उपज देता है।

पूसा सवानी : नई दिल्ली द्वारा विकसित किया गया है। ग्रीष्म एवं वर्षा ऋतु में खेती के लिए उपयुक्त। 50 दिनों के भीतर कटाई के लिए तैयार। कटाई के समय फल गहरे, हरे और 10–12 सेमी लंबे होते हैं। यह पीली शिरा मोजेक वायरस के प्रति संवेदनशील है। 48–60 क्विंटल प्रति एकड़ की औसत उपज देता है।

बीज एवं बुवाई : गर्मी की फसल के लिए 14–16 किलोग्राम तथा वर्षा की फसल के लिए 9–10 किलोग्राम बीज प्रति हैक्टर आवश्यकता होती है। एक ग्राम कार्बेन्डाजिम व 3 ग्राम थाइरम प्रति किलो बीज की दर से बीजोपचार करें। ग्रीष्म ऋतु में इसकी बुवाई फरवरी–मार्च तथा वर्षा ऋतु में जून–जुलाई में करनी चाहिए। गर्मी की फसल के लिए बीजों को 24 घंटे पानी में भिगोने के बाद बुवाई करने से अंकुरण जल्दी व अच्छा होता है। गर्मी में कतार से कतार की दूरी 30 से.मी. तथा पौधे से पौधे की दूरी 15–20 से.मी. तथा वर्षा ऋतु में कतार से कतार की दूरी 45–60 से. मी. तथा पौधे से पौधे की दूरी 30–45 से.मी. रखनी चाहिए।

खाद एवं उर्वरक : खेत तैयार करते समय अच्छी सड़ी हुई गोबर की खाद 120 से 200 क्विंटल प्रति हैक्टर की दर से भूमि में मिला देवें। इसके अलावा 25–30 किलो नत्रजन, 40–60 किलो फॉस्फोरस तथा 40–60 किलो पोटाश बुवाई से पूर्व प्रति हैक्टर की दर से देवें। बुवाई के एक माह बाद 25–30 किलो नत्रजन खड़ी फसल में देवें तथा इतनी मात्रा बुवाई के 60 दिन बाद देना चाहिए।

सिंचाई व अन्त : शस्य क्रियाएँ : बीज बुवाई से फल बनने व तुड़ाई करने के दौरान आवश्यकतानुसार सिंचाई करें तथा बीज बुवाई से 45 दिन तक 2–3 बार गुड़ाई जरूर करनी चाहिए। यदि मोजेक से रोग ग्रस्त पौधा दिखे तो तुरन्त निकालकर नष्ट कर देना चाहिए। खरपतवार नियंत्रण के लिए बुवाई से 4–5 दिन पूर्व खेत में बैसालिन 2 से 2.5 लीटर/हैक्टर की दर से मिलावें या 5 लीटर लासो बुवाई से एक दिन बाद छिड़काव करें।

पौध संरक्षण

हरा तेला, मोयला एवं सफेद मक्खी : ये कीट पौधों की पत्तियों एवं कोमल शाखाओं से रस चूस कर पौधों को कमजोर कर देते हैं जिससे उत्पादन पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। ये कीट विषाणु व्याधियाँ फैलाने में भी सहायक होते हैं। अतः नियंत्रण हेतु डाईमिथोएट 30 ई.सी. या मिथाइल डिमेटोन 25 ई.सी. या मैलाथियॉन 50 ई.सी. का एक मिलीलीटर प्रति लीटर पानी की दर से छिड़काव करें।

फली छेदक : इस कीट का लार्वा फलों में छेद करके अंदर घुस जाती है तथा अंदर से खाकर नुकसान पहुँचाती है जिससे फलों की विपणन गुणवत्ता कम हो जाती है। कीट से बचाव के लिए फूल आने के तुरन्त बाद क्यूनॉलफॉस 25 ई सी 1 मिलीलीटर मिलीलीटर प्रति लीटर पानी के हिसाब से छिड़काव करें। आवश्यकतानुसार इसे 10 से 15 दिन के अंतर से दोहरावें। रसायन के छिड़काव एवं फल तोड़ने में कम से कम 7 दिन का अंतर रखें अथवा प्रथम छिड़काव क्यूनॉलफॉस 25 ई सी 1 मिलीलीटर की दर से व दूसरा छिड़काव बेसिलस थूरिन्जेसिन्स की बी. टी. के साथ मिथोइल 40 एस पी(1000 मि.ली. + 626 ग्राम प्रति हैक्टर फूल आने पर व तीसरा छिड़काव 15 दिन के अन्तराल पर दूसरे छिड़काव वाली दवाइयों को दोहराकर करें।

मूल ग्रंथि सूत्रकृमि : इसके प्रकोप से पौधों की जड़ों में गाठें बन जाती हैं। पौधे पीले पड़ जाते हैं तथा उनकी बढ़वार रूक जाती है। खेत में 250–300 किलो नीम की खली बुवाई से पहले मिलावें तथा खेत की गर्मी के मौसम में गहरी जुताई करनी चाहिए। नियंत्रण हेतु बुवाई से पूर्व 25 किलो कार्बोफ्यूरॉन 3 जी प्रति हैक्टर भूमि में मिलावें।

व्याधि प्रबंध

छाछ्या : इस रोग के प्रकोप से पत्तियों पर सफेद चूर्णी धब्बे दिखाई देते हैं तथा अधिक रोगग्रस्त पत्रियाँ पीली पड़कर झड़ जाती हैं। नियंत्रण हेतु कैराथियान एल.सी. अथवा कैलेक्सिन एक मि.मी. प्रति लीटर पानी के घोल का छिड़काव करें व आवश्यकतानुसार 15 दिन के अंतराल पर दोहरावें।

जड़ गलन : यह फफूँद से होने वाली बीमारी है अतः नियंत्रण हेतु बीजों को बाविस्टिन 2.5 ग्राम/कि.ग्रा. दर से उपचारित करना चाहिए। यदि खेत में दिखाई पड़े तो 1 ग्राम बावस्टिन का घोल बनाकर पौधे के आस–पास डालें। बीज बुवाई से पहले खेत में ट्राईकोड्रमा फफूंद 4.0 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर की दर से 100 कि.ग्रा. सड़ी हुई खाद में मिलाकर छाया में रख देवें तथा 10–15 दिन बाद खेत में मिलावें। यह मित्र फफूँद हानिकारक फफूँद को नष्ट करती है जिससे फसल रोग प्रभावित होने से बची रहती है।

पीत शिरा मोजेक : यह वायरस जनित रोग है जो सफेद मक्खी द्वारा एक पौधे से दूसरे पौधे पर फैलता है। इसमें पत्तियों की शिरायें तथा फल पीला पड़ जाता है जिससे फलन पर बुरा प्रभाव पड़ता है। अतः इसके नियंत्रण हेतु मेटासिस्टॉक्स या मैलाथियान दवा 1 मिली/लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें। यदि पत्तियों की निचली सतह पर सफेद पाउडर दिखाई पड़े तो घुलनशील गंधक 2 ग्राम/लीटर या कैलिक्सीन 0.5 मिली/लीटर घोल का छिड़काव करें।

फलों की तुड़ाई एवं उपज : फलों की तुड़ाई समय पर करना अति आवश्यक है। फलों को यदि अधिक समय तक पौधे पर रहने दिया जाता है तो फल कड़क तथा रेशेदार हो जाते हैं एवं स्वाद भी खराब हो जाता है। इसलिए फलों को कोमल अवस्था में तोड़कर किसान अधिक बाजार भाव प्राप्त कर सकते हैं। गर्मी की फसल से लगभग 50 क्विंटल तथा वर्षा की फसल से लगभग 100 क्विंटल प्रति हैक्टर उपज प्राप्त होती है।

❋❋❋

मेथी उत्पादन की उन्नत प्रौद्योगिकी

गुरशरण सिंह, राकेश कुमार यादव, प्रीति वर्मा एवं यामिनी टाक
कृषि महाविद्यालय, कोटा एवं कृषि महाविद्यालय, उम्मेदगंज, कोटा

उत्पत्ति और वितरण

मेथी फैबेसी परिवार की एक वार्षिक फसल है। यह एक द्विगुणित प्रजाति है। इसे दर्ज इतिहास में सबसे पुराना ज्ञात औषधीय पौधा माना जाता है। मेथी की उत्पत्ति का केंद्र दक्षिण–यूरोप, भूमध्य क्षेत्र और पश्चिमी एशिया है। भारत भी मेथी का मूल निवास है तथा कश्मीर, पंजाब और ऊपरी गंगा के मैदानों में यह पौधा जंगली रूप में पाया जाता है। प्रमुख मेथी उत्पादक देश भारत, अर्जेंटीना, मिस्र, फ्रांस, स्पेन, तुर्की, मोरक्को, चीन एवं अफगानिस्तान हैं। भारत विश्व में सबसे बड़ा मेथी उत्पादक देश है। भारत में राजस्थान, गुजरात, उत्तरांचल, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, हरियाणा एव पंजाब प्रमुख मेथी उत्पादक राज्य हैं। राजस्थान देश का मेथी कटोरा है, जो देश के उत्पादन में लगभग 80 प्रतिशत योगदान देता है।

उपयोग

मेथी का बीज मुख्य रूप से मसाले, च्युइंग गम, सौन्दर्य प्रसाधन, आइसिंग, अचार मिक्स और हेयर कंडीशनिंग के रूप में उपयोग किए जाते हैं। हरी पत्तियों का उपयोग सब्जी, चारे तथा पशुओं के सूखे चारे के रूप में किया जाता है। बीजों का उपयोग डाई बनाने, अल्कलॉइड्स या स्टेरॉयड के निष्कर्षण के लिए भी किया जाता है। सूखे पौधों को कीट प्रतिरोधी के रूप में अनाज भंडारण में उपयोग किया जाता है। औषधीय रूप से इसके बीज वातहर, सुगंधित एवं टॉनिक होते हैं। फोड़े, अल्सर के लिए पोल्टिस में बाहरी रूप से उपयोग किए जाते हैं और आंतरिक रूप से आंत्र पथ की सूजन कम करने हेतु उपयोग किए जाते है। मेथी मधुमेह रोगियों में उपवास और खाने के बाद के रक्त शर्करा के स्तर को कम करता है। इसके बीज के सेवन से कोलेस्ट्रॉल और ट्राइग्लिसराइड्स का स्तर कम हो जाता है। इस प्रकार भारतीय महिलाएं स्तनपान को बढ़ावा देने के लिए और शक्ति के लिए बीजों का सेवन करती हैं। मेथी के बीज में पर्याप्त मात्रा में डायोसजेनिन 0.41 से 1.20 प्रतिशत होता है।

प्रमुख किस्में

आरएम 1, आरएमटी 143, आरएमटी 305, अजमेर मेथी 1, अजमेर मेथी 2, राजेंद्र क्रांति, लैम चयन 1, हिसार सोनाली, हिसार सुवर्णा, हिसार मुक्ता, हिसार माधवी, एचएम 350, पंत रागिनी, पूसा अर्ली बंचिंग आदि प्रमुख किस्में लोकप्रिय हैं।

जलवायु

मेथी की फसल को ठंडी जलवायु की आवश्यकता होती है, अधिक तापमान का फसल पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। व्यापक अनुकूलन क्षमता होने के कारण फसल को उष्णकटिबंधीय और समशीतोष्ण दोनों क्षेत्रों में 2000 मीटर की ऊंचाई तक सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है। भारत में इसे मुख्य रूप से रबी मौसम की फसल के रूप में उगाया जाता है एव दक्षिण भारत में इसे वर्षा ऋतु में भी उगाया जाता है। फसल कम से मध्यम वर्षा वाले क्षेत्रों में उगाई जा सकती है।

मृदा

मेथी लगभग सभी प्रकार की मृदा में उगाई जा सकती है जिसमें जल निकासी की उचित व्यवस्था हो। इसकी खेती के लिए कार्बनिक पदार्थ से भरपूर दोमट मिट्टी का भी उपयोग किया जा सकता है, परन्तु रेतीली मृदा में अच्छी फसल नहीं होती है। बारानी खेती के लिए काली कपास की मिट्टी सबसे उपयुक्त होती है। मृदा का पी.एच– 6.5 से 7.5 के बीच में यह फसल हमेशा बेहतर पत्तियों की गुणवत्ता के साथ उच्च उपज देती है।

भूमि की तैयारी

बीजों के बेहतर अंकुरण एव पौधों की वृद्धि के लिए भूमि को पहले 3 से 4 जुताई करके अच्छी तरह से तैयार करना चाहिए। पहली जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से करनी चाहिए समूह उसके बाद 2 से 3 बार हैरो से जुताई करके मिट्टी को भुरभुरा कर लेना चाहिए। बीज के बेहतर अंकुरण के लिए बुवाई के समय भूमि में अच्छी नमी होनी चाहिए।

बुवाई का समय

मेथी ठंडे मौसम की फसल होने के कारण उत्तरी मैदानी क्षेत्रों में अक्टूबर से नवंबर में बोई जाती है। पहाड़ी क्षेत्रों में इसकी बुवाई मार्च से मई तक की जाती है। दक्षिण भारत के क्षेत्रों जैसे कर्नाटक, आंध्र प्रदेश एवं तमिलनाडु में इसकी खेती रबी एवं खरीफ दोनों मौसम में की जाती है। मेथी की बुवाई के लिए नवंबर का पहला पखवाड़ा सबसे अच्छा समय है।

बीज दर एवं बीज उपचार

मेथी की अधिक उपज हेतु बीज दर 20 से 25 किग्रा/हेक्टेयर तथा कसूरी किस्म के लिए 10 से 12 किग्रा/हेक्टेयर पर्याप्त रहती है। मेथी दलहनी फसल है। यह वातावरण से लगभग 283 किग्रा/हेक्टेयर/वर्ष नत्रजन का स्थिरीकरण करती है। मेथी के उत्पादन में राइजोबियम की भूमिका बहुत अधिक है। बुवाई से पहले बीजों को राइजोबियम मेलिलोटी स्थानीय कल्चर से उपचारित करना चाहिए खासकर जब फसल नए खेत में बोई जाती है। शुरुआती फफूंद रोगों के नियंत्रण हेतु बीज को बाविस्टिन 2 ग्राम/किलोग्राम बीज से उपचारित करना चाहिए।

बोने की विधि

मेथी को या तो पंक्तियों में या अच्छी तरह से तैयार समतल खेत में बीजों को बिखेर कर और विवेकपूर्ण ढंग से सतह को रेकिंग करके बोया जा सकता है। पंक्ति से पंक्ति की दूरी 25 से 30 सेमी की आवश्यकता होती है तथा पौधे से पौधे की दूरी 10 से 15 सेमी की दूरी बनाए रखने के लिए पौधों पौधों की छंटाई की जाती है। बीज बोने के लगभग 5 से 7 दिनों में अंकुरित हो जाते हैं। यद्यपि बोने वाले बीजों की गहराई बुवाई के समय मिट्टी के प्रकार और मिट्टी की नमी पर निर्भर करती है। लेकिन छोटे आकार के होने के कारण सामान्य मेथी के बीज आमतौर पर 2 से 3 सेमी और कसूरी मेथी के बीज 1 से 1–5 सेमी की गहराई पर बोए जाते हैं।

सिंचाई

मेथी, मुख्य रूप से एक सिंचित फसल होने के कारण इसकी वृद्धि के लिए निश्चित अंतराल पर हल्की सिंचाई की आवश्यकता होती है। लेकिन देश के कुछ हिस्सों में वर्षा आधारित परिस्थितियों में भी इसकी खेती की जा सकती है। हल्की मिट्टी में सामान्यतः 6 से 7 सिंचाइयों की आवश्यकता होती है और भारी मृदा में 4 से 5 सिंचाइयों की आवश्यकता होती है।

खरपतवार प्रबंधन

फलीदार फसल होने के कारण मेथी को जड़ प्रणाली के विकास के लिए उचित मिट्टी के वातन की आवश्यकता होती है। स्वस्थ फसल और अधिक उपज के लिए दो निराई–गुड़ाई, पहली गुड़ाई बुवाई के 15 से 20 दिन बाद, पौधों की छंटाई के साथ और दूसरी निराई–गुड़ाई बुवाई के 40 से 50 दिन बाद करनी चाहिए। एकीकृत खरपतवार प्रबंधन पेंडीमेथालिन 1 किग्रा/हेक्टेयर के उपयोग से एकीकृत खरपतवार प्रबंधन या 500 से 600 लीटर पानी में फ्लुक्लोरिन 0.75 किग्रा/ हेक्टेयर के बुवाई पूर्व प्रयोग पर एक हाथ से निराई के साथ खरपतवार नियंत्रण की प्राप्ति के लिए बहुत प्रभावी तरीका है। मेथी की खेती में अधिक उपज और लाभ। विभिन्न शाकनाशी उपचारों में पेंडीमिथालिन 0.75 किग्रा/हेक्टेयर और फ्लुक्लोरालिन 1.0 किग्रा/हेक्टेयर बेहतर पाए गए।

प्रमुख कीट

माहू या चेपा : चेपा मेथी की फसल अत्यधिक हानि पहुँचाता है तथा समूह में पाया जाता है। निम्फ और वयस्क दोनों कोमल पत्तियों, फूलों आदि से रस चूसते हैं। गंभीर संक्रमण पत्तियों की उपज और गुणवत्ता को बुरी तरह प्रभावित करता है। चेपा के प्रकोप से पौधे पीले हो जाते हैं और परिणामस्वरूप बीज सिकुड़ जाते हैं और बीज की उपज के साथ–साथ गुणवत्ता में भी कमी आती है। गंभीर स्थिति में 10 दिनों के अंतराल से इमिडाक्लोरप्रिड 0.005 या डाइमेथोएट 0.33 प्रतिशत के दो छिड़काव कीट प्रबंधन में बहुत प्रभावी है।

पत्ती खाने वाली सुंडी : बड़ी संख्या में सुंडी दिखाई देती है और पत्तियों को नष्ट कर देती है। अंडे गुच्छों में दिए जाते हैं और युवा लार्वा सामूहिक रूप से पत्तियों को खाते हैं। ये पत्तियों से हरे पदार्थ को खुरच कर निकाल देते हैं और कागज जैसी सफेद संरचना का रूप देते हैं। जिससे उपज और गुणवत्ता में काफी नुकसान होता है। लार्वा के विकास के प्रारंभिक चरण में नीम के बीज का अर्क 5 प्रतिशत या नीम का तेल 2 प्रतिशत का छिड़काव करें। न्यूक्लियर पश्चलीहाइड्रोसिस वायरस 250 और बेवेरिया बेसियाना 100 बीजाणु/मिली का उपयोग एक प्रभावी जैविक नियंत्रण है।

फली छेदक: यह कीट पत्तियों, फूलों और फलियों को खाता है। मादा तितली अपने अण्डे पत्ती की निचली सतह पर देती है। जो बाद में युवा लार्वा पत्तियों को नुकसान पहुँचाती हैं। यदि कीट का नियंत्रण नहीं होता है तो 10 से 90 प्रतिशत तक नुकसान होता है। कीटों की संख्या अधिक होने पर क्विनालफॉस 0.05 प्रतिशत का छिड़काव करें।

तेला : तेला मेथी की फसल पर प्रारंभिक अवस्था में हमला करता है। निम्फ और वयस्क पत्तियों का रस चूसते हैं जिससे पत्तियां पीली पड़ जाती हैं। जैसिड्स के प्रभावी नियंत्रण के लिए क्यूनॉलफॉस 2 मि.ली. प्रति लीटर का पर्णीय छिड़काव किया जाता है।

प्रमुख रोग

जड़ गलन : मेथी की जड़ गल्न अल्टरनेरिया अल्टरनेटा के कारण होती है। यह एक मृदा जनित रोग है जो प्रमुख मेथी उगाने वाले क्षेत्रों में एक समस्या है और उपज में भारी कमी लाता है। लक्षणों में जड़ों के सड़ने की अलग–अलग अवस्था शामिल हैं। जो आम तौर पर 30 से 45 दिन पुराने पौधों में पीले रंग की होती हैं। प्रभावित पौधे बाद में मुरझा कर सूख जाते हैं।

नियंत्रण : संक्रमण के स्रोत को कम करने के लिए फसल चक्र और रोगग्रस्त पौधों को हटाना प्रभावी होता है। बीज कार्बेन्डाजिम 3 ग्राम/किग्रा बीज के साथ उपचार बहुत प्रभावी है।

आर्द्र गलन: आर्द्र गलन राइजोक्टोनिया सोलानी के कारण होता है। यह रोग मुख्य रूप से कवक के कारण होता है जिससे पौधों को काफी नुकसान होता है। इसका प्रभाव सबसे अधिक नए अंकुरित पौधों पर होता है, जिससे पौधा जमीन के पास से सड़–गल कर नीचे गिर जाता है।

नियंत्रण : संक्रमण के स्रोत को कम करने के लिए फसल चक्र और रोगग्रस्त पौधों को हटाना प्रभावी होता है। बीज कार्बेन्डाजिम 3 ग्राम/किग्रा बीज के साथ उपचार बहुत प्रभावी है।

कटाई और उपज

सामान्य मेथी बुवाई के लगभग 20 दिनों में ताजी हरी पत्तियों और नई टहनियों को काटने के लिए तैयार हो जाती है जबकि कसूरी किस्म की मेथी बुवाई के 25 से 30 दिनों में तैयार हो जाती है और बाद की कटाई 15 से 20 दिनों के अंतराल पर की जा सकती है। कटाई आमतौर पर तेज चाकू से जमीन की सतह से 3 से 4 सेंटीमीटर ऊपर ठूंठ छोड़ कर की जाती है। यदि मेथी को देर से काटा जाए तो इसके पत्तों का स्वाद कड़वा हो जाता है।

मेथी की किस्म और मौसम के आधार पर बीज के लिए फसल उगाने में बुवाई से लेकर कटाई तक लगभग 80 से 165 दिन लगते हैं। जब 70 प्रतिशत फली पीली हो जाती है तो पूरे पौधों को दरांती से आधार से काटकर निकाल लिया जाता है। बीजों को थ्रेसर से या फटक कर अलग किया जाता है। बीज को 7 से 8 प्रतिशत नमी तक सुखाया जाता है। सिंचित परिस्थितियों में, सामान्य प्रकार की मेथी की किस्में सामान्य रूप से ताजी हरी पत्ती और बीज उपज क्रमशः 70 से 80 और 15 से 20 क्विंटल/हेक्टेयर और कसूरी प्रकार 80 से 100 क्विंटल हरी पत्तियां प्रति हेक्टेयर देती हैं।

सफाई, पैकेजिंग और भंडारण

हरी पत्तियाँ बहुत जल्दी खराब होने वाली होती हैं। इसलिए कटाई के तुरंत बाद उनका विपणन किया जाता है। हालांकि, अच्छी तरह से सूखे पत्तों को लगभग 10 से 12 महीनों तक संग्रहीत किया जा सकता है। पत्तियों को कटाई के बाद लगभग 24 घंटों के लिए परिवेशी परिस्थितियों में संग्रहीत किया जा सकता है, हालांकि, शीतगृह में 0 डिग्री सेल्सियस तापमान और 90 से 95 प्रतिशत सापेक्ष आर्द्रता पर पत्तियों के भंडारण की अवधि को 10 दिनों तक बढ़ाया जा सकता है। बीजों को पॉलिथीन फिल्म प्लास्टिक बैग, वैक्यूम पैकेज आदि के साथ पंक्तिबद्ध थैलों में पैक किया जाता है। मेथी के बीजों की सफाई के लिए वैक्यूम ग्रेविटी सेपरेटर का उपयोग किया जाता है। ठीक से साफ किए गए मेथी के बीजों को प्रारंभिक नमी स्तर 7 से 8 प्रतिशत पर रखा जाता है। मेथी के बीजो को अच्छी तरह से पैक करके अगले मौसम की फसल की बुवाई तक सामान्य परिस्थितियों में हवादार सूखी और ठंडी जगह पर रखा जाता है।

इस प्रकार यदि उपरोक्त बातों का ध्यान रखते हुए मेथी की फसल को उगाया जाता है तो गुणवत्ता युक्त अधिक पैदावार प्राप्त की जा सकती है ।

ग्लेडियोलस की उन्नत खेती

रिशिका चौधरी, अनुज कुमार एवं अरविंद सिंह तेतरवाल

के. एन. के. उद्यानिकी महाविद्यालय, मंदसौर, मध्यप्रदेश एवं कृषि विज्ञान केन्द्र, पाली-मारवाड़, राजस्थान

ग्लेडियोलस एक प्रमुख कट फ्लावर है। ग्लेडियोलस को उसकी सुंदर एवं आकर्षक स्पाइक एवं उस पर लगे पुष्पों के लए बहुत ही पसंद किया जाता है। यह अपनी आकर्शक पुष्प डंडी के लिए अति लोकप्रिय है। इसके कंद से लगभग दो से तीन फुट लम्बी पुश्प डंडी निकलती है जिस पर 12 से 18 पुष्प निकलते हैं। इसके फूल दिखने में सितारों की तरह होते हैं। यह फूल अधिक समय तक खराब नहीं होते हैं, इन्हें एक सप्ताह तक रखा जा सकता है। इसके छोटे फूल स्पाइक पर क्रम से एवं धीरे-धीरे खिलते हैं जिससे कटे हुए फूलों को ज्यादा समय तक रख सकते हैं। ग्लेडियोलस विभिन्न रंगों में पाये जाते हैं। यथा एक या दोहरे रंग के बीच में धब्बे या धब्बे रहित, सफेद गुलाबी से लेकर गहरे लाल रंगों में मिलते है। ग्लेडियोलस की स्पाइक को मुख्यतः बगीचों में आन्तरिक सजावट के लिए एवं गलदस्तें बनाने के लिए इस्तेमाल करते हैं। औषधी के रूप में यह दस्त और पेट की गड़बड़ी के उपचार में पारंपरिक चिकित्सा में इस्तेमाल किया जाता है। विश्व में इसकी 33000 प्रजातियाँ हैं। जबकि हमारे देश में भी इसकी 700 से 800 किस्में उपलब्ध हैं। ग्लेडियालस का वैज्ञानिक नाम ग्लेडियोलस ग्रैंडिफ्लोरस तथा कुल इरीडेसी एवं इसका उत्पत्ति स्थान दक्षिणी अफ्रीका है। ग्लेडियोलस का नाम लैटिन शब्द ग्लैडियोलस से आया है जिसका अर्थ ''तलवार'' होता है, क्योंकि इसकी पत्तियाँ का स्वरूप तलवार की भांति होता है। इसे ''सोर्ड लिली'' भी कहते हैं। भारत में इसकी खेती अंगेजों द्वारा 16-17 शताब्दी में शुरू की गई थी।

तापमान एवं जलवायु : ग्लेडियोलस के पौधों को अच्छे से वृद्धि करने के लिए सही तापमान की जरूरत होती है। इसके पौधों को शुरूआत में अंकुरित होने के लिए सामान्य तापमान की आवश्यकता होती है। इसकी खेती के लिए न्यूनतम तापमान 16 डिग्री सेल्सियस तथा अधिकतम तापमान 25 डिग्री सेल्सियस उपयुक्त रहता है। ग्लेडियोलस के फूल अधिकतम 40 डिग्री तापमान को सहन कर सकते हैं। फूल खिलने के समय वर्षा नहीं होनी चाहिए। ग्लेडियोलस की खेती के लिए समशीतोष्ण जलवायु को सबसे अच्छा माना जाता है। इसकी खेती सफलतापूर्वक विभिन्न मौसमों में की जा सकती है। ग्लेडियोलस के पौधों को इस प्रकार लगाया जाता है कि इसे हमेशा अनुकूल मौसम प्राप्त हो जिससे कि फूल, घनकंद एवं घनकन्दिकाएं लगातार मिलती रहे। ग्लेडियोलस को धूपदार स्थान पर लगाया जाता है। अतः स्थान चुनाव करते समय इसका विशेष ध्यान रखना चाहिए। दिन की अवधि स्पाईक की गुणवत्ता को बढ़ाती है। कम से कम 12 घंटे की धूप एवं रोशनी मिलने से फूल अच्छे गुणों वाले प्राप्त होते हैं। सर्दी के कारण होने वाली हानि पौधा लगाने के बाद दो पत्तियों की अवस्था में एवं स्पाइक निकलने के समय सात पत्तियों की अवस्था में ज्यादा होती है।

उपयुक्त मृदा एवं खेत की तैयारी : इसकी खेती में अच्छी जल निकासी वाली जगहों की आवश्यकता होती है। ग्लेडियोलस की अच्छी पैदावार के लिए बलुई दोमट मिट्टी को सबसे अच्छा माना जाता है। भारी मिट्टी में जैविक खाद एवं बालू मिलाने पर ग्लेडियोलस की अच्छी पैदावार होती है। मिट्टी का पी.एच. मान 5.5 से 6.5 के मध्य होना चाहिए। अंतिम रूप में खेत तैयार करते समय प्रति वर्ग मीटर 5-6 किलो गोबर की सड़ी हुई खाद देने पर स्पाइक लम्बे एवं पतले हो जाते हैं।

ग्लेडियोलस के पौधों को खेत में लगाने से पहले खेत की अच्छी तरह से गहरी जुताई करनी चाहिए। इसके बाद मिट्टी पलटने वाले हलों से गहरी जुताई कर खेत को कुछ दिन के लिए ऐसे ही छोड़ देना चाहिए। खेत में पुरानी गोबर की खाद डालकर उसे अच्छे से मिट्टी में मिला देना चाहिए। इसके बाद कल्टीवेटर का इस्तेमाल कर खेत की तीन तिरछी जुताई कर देनी चाहिए। इसके कंदो की रोपाई को नमी वाली भूमि में किया जाता है इसलिए जब खेत की जुताई हो चुकी हो तो उसमें पानी को भरकर पलेवा कर देना चाहिए। इसके बाद जब खेत की मिट्टी सूखी दिखाई देने लगे तो खेत में रोटावेटर चलाकर एक बार फिर जुताई कर देना चाहिए। इससे खेत की मिट्टी भुरभुरी हो जाएगी। फिर खेत को पाटा लगाकर खेत को समतल कर देना चाहिए जिससे खेत में जलभराव की समस्या ना हो।

लगाने का उपयुक्त समय : मैदानी क्षेत्रों में कंद लगाने का उत्तम समय सितम्बर एवं अक्टूबर के मध्य है। सर्दियों में फूल प्राप्त करने के लिए इसे अक्टूबर एवं नवम्बर के मध्य में लगाते है। उत्तरी भारत के मैदानी क्षेत्रों में अक्टूबर के अंत से अप्रैल तक अच्छी गुणवत्ता वाली स्पाइक प्राप्त करने के लिए घनकंद लगाने के समय को जुलाई से दिसम्बर तक समायोजित किया जाता है। घनकंदों को 15 दिनों के अन्तराल पर लगाने से ज्यादा समय तक फूल मिलते हैं।

प्रमुख प्रजातियाँ एवं प्रकार: ग्लेडियोलस मुख्य रूप से दो प्रकार का होता है: पहला जिसमें बड़े फूल होते हैं तथा दूसरा बटरफ्लाई एवं मिनिएचर है। इन दोनों प्रकारों में अगेती, मध्यम एवं पिछेती किस्मों के फूल होते हैं। बटरफ्लाई में स्पाइक छोटी होती है एवं विभिन्न रंगों में मिलती है। कभी–कभी गहरे रंगों वाली भी होती है जो कि बहुत सुंदर दिखती है। यह छोटे बगीचों एवं क्यारियों के लिए अत्यंत उपयुक्त है। ग्लेडियोलस की एक अन्य प्रजाति प्रिमुलिनस है। इसमें ऊपर की पखुंडियाँ मुड़ी हुई होती है, जो दिखने में बहुत सुंदर लगती है।

अर्का आयुष

अर्का प्रथम

अर्का केसर

अर्का तिलक

ग्लेडियोलस की प्रमुख प्रचलित किस्मों में–फ्रेंडशिप, स्नोप्रिंसेस, व्हाइट प्रोसपेरिटी, जैस्टर, अमेरिकन ब्यूटी, यलोस्टोन, नोवालक्स, मैलोडी, आस्कर, गुंजन, जीएस–2, पंजाब डॉन, पूसा मनमोहक, पूसा रेड वेलेन्टाईन, पूसा सिन्दूरी, पूसा उर्मिल, पूसा किरण, पूसा शुभम, पूसा अर्चना, अर्का केसर, अर्का तिलक, अर्का प्रथम, अर्का आयुष इत्यादि हैं। सुगंधित किस्मों में लकी स्टार एवं पिंक फ्रेंग्रेंस आदि हैं। रंगों के आधार पर किस्मों को निम्न प्रकार वर्गीकृत किया गया है:–

- **सफेद :** व्हाईट फ्रेंडशीप, व्हाईट प्रोस्पेरिटी, स्नों व्हाईट, मीरा।
- **गुलाबी :** पिंक फ्रेंडशीप।
- **पीला :** समर पर्ल, टोपाल, सपना, टीएस–14।
- **लाल :** अमेरिकन ब्यूटी, ऑस्कर, नजराना, रेड ब्यूटी गुलाबी।
- **नारंगी :** रोज सुप्रिम।
- **बैंगनी :** हरमैजस्टी, समर सन शाईन, डेहली लोकल, पंजाब मार्निंग।

ग्लेडियोलस का प्रवर्धन एवं लगाने की विधि: ग्लेडियोलस का प्रवर्धन मुख्यत: घनकंद द्वारा होता है। इसे बीज द्वारा भी लगा सकते है परन्तु इससे अच्छे गुणों वाले फूल प्राप्त नहीं होते हैं। प्रजनक, बीजों का इस्तेमाल पौधों की नयी किस्में विकसित करने में करते हैं। छोटी घनकंदिकाओं एवं घनकंदों को जल्दी से बढ़ाने के लिए 24 घंटे पानी में भिगोते हैं। पानी में भिगोने से पहले उसके ऊपर की शल्कों को सावधानी पूर्वक हटा देते हैं। घनकंदिकाएँ दो–तीन बार लगाने के बाद ही उचित आकार के फूल दे पाती है।

अच्छे अकार का फूल प्राप्त करने के लिए घनकंद का भार 50 ग्राम तथा आकार लगभग 4–5 सेमी. व्यास का होना चाहिए। प्रदर्शनी हेतु बड़ी स्पाइक प्राप्त करने लिए घनकंद का क्रमश: 7.5 से 10.0 सेमी. व्यास होनी चाहिए। चपटे आकार के बड़े घनकंद की अपेक्षा एक मध्यम आकार का नुकीला घनकंद ज्यादा अच्छा होता है। सभी घनकंदों को लगाने के पूर्व उन्हे आधा घंटा कैप्टान 2 ग्राम या बाविस्टिन 2 ग्राम प्रति लीटर पानी में डालकर उपचारित करना चाहिए। घनकंदों को लगाने से पहले उनकों अंकुरित करने के लिए उसे शुष्क अंधेरे स्थान में रखकर काली पॉलिथिन से ढक देते हैं या भीगे हुए बालू की 5–7.5 सेमी. मोटी परतों के बीच रख देते हैं। अंकुरित होने के बाद इसे गमलों या क्यारियों में लगा देते हैं।

घनकंदों को 15–20 सेमी. की दूरी पर लगाना चाहिए तथा प्रत्येक कतार के बीच 30–45 सेमी. की दूरी रखनी चाहिए। कतार के बीच में दूरी रखने से अन्य कर्षण–क्रियाऐं करने में सुविधा होती है। घनकंदों को 5 सेमी. मिट्टी के नीचे दबाया जाता है। जहाँ तेज हवाएं चलती हों वहाँ पर घनकंदों को 7 सेमी. नीचे मिट्टी में दबाना चाहिए। एक हेक्टेयर के लिए कुल 125000 से 150000 घनकंदों की आवश्यकता होती है।

खाद एवं उर्वरक की मात्रा : ग्लेडियोलस के पौधों में उर्वरक की सामान्य मात्रा ही काफी हाती है। इसमें सड़े हुए गोबर की खाद, पत्ती खाद या कम्पोस्ट खाद का प्रयोग करना सबसे उत्तम रहता है। प्रति हेक्टैयर 20–30 टन गोबर की सड़ी खाद, 75 किलो नाइट्रोजन, 100 किलो फास्फोरस तथा 140 किलो पोटाश का प्रयोग करना चाहिए। एक महीने के बाद फिर मिट्टी चढ़ाते समय 75 किलो नाइट्रोजन प्रति हेक्टेयर की दर से प्रयोग करना चाहिए।

सिंचाई प्रबंधन: ग्लेडियोलस के पौधों की अच्छी पैदावार के लिए खेत में नमी का होना जरूरी होता है। इसलिए उन्हें अधिक सिंचाई की आवश्यकता होती है। इसके कंदों की रोपाई के बाद इनकी पहली सिंचाई कर देनी चाहिए। गर्मी के मौसम में इन्हें अधिक पानी की आवश्यकता होती है जिसमें इन्हें 5 दिन के अंतराल में सिंचाई करना चाहिए। जब इसके पौधों की पत्तियाँ पीली दिखाई देने लगे तब इनमें पानी देना बंद कर देना चाहिए।

स्टेकिंग (सहारा देना): जब स्पाइक निकलने लगे तो उसे बांस की डंडियों की सहायता से बांध देने से वे तेज हवा में नहीं गिरती है। अगर पौधे बहुत नजदीक या झुंड में लगे हों तो डंडे की जरूरत नहीं पड़ती है। मिनिएचर एवं बटरफ्लाई में डंडे लगाने की जरूरत नहीं पड़ती है। जब पौधे 20–30 सेमी. लंबाई की हो जाए तब उन पर मिट्टी चढ़ानी चाहिए।

खरपतवार प्रबंधन : ग्लेडियोलस में गुणवत्तायुक्त स्पाईक प्राप्त करने के लिए इसमें समय–समय पर खरपतवार निकालते रहना चाहिए। पूरी फसल अवधि में 4–5 बार खरपतवार निकालने की जरूरत पड़ती है।

स्पाईक तुड़ाई : स्पाइक निकलने के बाद जब सबसे नीचे वाले फूल का रंग दिखने लगे तब ये स्पाइक काटने योग्य हो जाती है। इसकी कटाई सुबह के समय करना उपयुक्त रहता है। स्पाइक को काटने के लिए तेज चाकू का इस्तेमाल इस तरह से करना चाहिए कि कोई भी पत्ती का नुकसान न हो, अन्यथा ये घनकंद की वृद्धि को प्रभावित करेगी। स्पाइक को काटने के तुरन्त बाद पानी से भरी हुई बाल्टी में डाल देते हैं। तब उसे गुलदस्तें में रखा जाता है तो सभी पुष्प नीचे से ऊपर की ओर क्रम से खिलते हैं जिससे स्पाइक को ज्यादा दिनों तक रखा जा सकता है।

स्पाइक को रखने की अवधि को बढ़ाने के लिए उसके सबसे नीचले भाग (लगभग 1.5 सेमी.) को पानी के अंदर ही रखकर एक दिन के अंतराल पर काटने के बाद प्रत्येक दिन ताजा पानी डालना चाहिए। कट फ्लावर रखने की अवधि (वेस लाइफ) बढ़ाने के लिए 200 पी.पी.एम. 8 हाईड्रोक्सिकीनोलाईन साइट्रेट एवं 4 प्रतिशत सुक्रोज के घोल में डालकर रखा जाता है। स्पाइक को 1–2 डिग्री सेल्सियस तापमान में दो सप्ताह के लिए रखा जा सकता है।

घनकंद खुदाई व संग्रहण : समयानुसार बुवाई करने पर कंदों को लगाने के दो से ढाई महीने बाद फूल निकलने लगते हैं। घनकंद एवं घनकंदिकायें स्पाइक के काटने के 6–8 हफ्ते बाद उखाड़ने के योग्य हो जाती है। घनकन्द खुदाई के 2–3 सप्ताह पहले सिंचाई बंद कर दी जाती है। फूल खिलने के बाद पत्तियाँ पीली पड़ने लगें तब पौधों की सतह से 15 सेमी. ऊपर मरोड़कर झुका देते हैं, जिससे घनकंद एवं घनकंदिकाएँ अच्छी तरह से परिपक्व हो जाती है। घनकंदों को मिट्टी से निकालने का कार्य मार्च–अप्रैल में होता है। मिट्टी से निकालने के बाद घनकंदों को पत्तियों सहित छायाँ में एक सप्ताह के लिए छोड़ देते हैं। पत्तियाँ हटाकर घनकंद एवं घनकंदिकाओं को साफ करते रहते हैं। कटे हुए घनकंद एवं घनकंदिकाओं को छांट लेना चाहिए अन्यथा गोदाम में सड़ने की संभावना रहती है। सड़ने से बचाने हेतु 0.2 प्रतिशत बाविस्टीन या 0.2 प्रतिशत कैप्टान के घोल में आधा घंटे के लिए डुबाकर रखते हैं। उसके बाद उसे सुखाकर हल्के लकड़ी या कागज के बक्से या जूट के बोरे में डालकर ठंडे स्थानों में अगले मौसम के लिए रखते हैं।

उपज : ग्लेडियोलस में औसतन 2.0 से 2.5 लाख स्पाईक तथा उतने ही घनकंद प्रति हेक्टेयर प्राप्त होते हैं।

प्रमुख कीट व बीमारियाँ एवं उनकी रोकथाम

उकटा या कॉलर रॉट रोग : इस रोग का प्रभाव अक्सर गर्मियों के मौसम में पौधों के विकास की अवस्था के दौरान देखने को मिलता है। यह रोग पौधों के विकास को पूरी तरह से रोक देता है जिससे पत्तियाँ पीली पड़कर सूख जाती है। इसके कुछ समय पश्चात् ही पौधा पूरी तरह से सूखकर खराब हो जाता है। इस रोग से बचाव के लिए घनकंद लगाने से पहले 2.5 किग्रा ट्राईकोडर्मा विरडी को 25 किग्रा सड़ी गोबर की खाद में मिलाकर मिट्टी में डालना चाहिए। या घनकंद लगाने से पहले बाविस्टिन दवा 2 से 3 ग्राम प्रति लीटर पानी के घोल में 30 मिनट तक उपचारित करना चाहिए। एक ही खेत में लगातार 2–3 बार से ज्यादा ग्लेडियोलस नहीं लगाना चाहिए।

संग्रहण में सड़ना : यह भी फफूंद एवं उसकी प्रजातियों द्वारा फैलता है। इसके कारण घनकंद की सतह काली पड़ जाती है एवं सड़ी हुई गंध आती है। इसकी रोकथाम हेतु घनकंदों को संग्रहण करने के पूर्व बाविस्टिन 2 ग्राम/लीटर पानी में घोलकर कंद को उपचारित करना चाहिए।

पत्ती भक्षक कैटरपिलर : यह कीट पत्तियों को खाता है। इसकी रोकथाम के लिए क्यूनॉलफॉस 25 ई.सी. दवा का 2.0 मि.ली./लीटर पानी में घोल बना कर छिड़काव करना चाहिए।

माइट : यह कीट पौधे का रस चूसकर नुकसान पहुँचाता है, जिससे पौधे पर भूरे रंग के धब्बे होकर पत्तियाँ झड़ने लगती हैं। इसकी रोकथाम के लिए डायकोफॉल दवा का 2.0 मि.ली./लीटर पानी की दर से घोल बनाकर छिड़काव करना चाहिए।

थ्रिप्स : इस कीट के शिशु ग्लेडियोलस की पत्तियों का रस चूसते हैं। जिससे सिल्वर रंग की धारियाँ बनती हैं एवं भूरे रंग की होकर पत्तियाँ सूखने लगती हैं। इसकी रोकथाम के लिए डायमिथोएट 30 ई.सी. का 2 मि.ली./लीटर पानी की दर से घोल बनाकर छिड़काव करना चाहिए।

अतः उक्त वर्णित उन्नत तकनीकियों का उपयोग कर ग्लेडियोलस की खेती से अधिक उपज एवं लाभ प्राप्त किया जा सकता है।

पपीता के रोग व उनका नियत्रंण

चतुर्भुज मीना, रामकिशन मीना, डी एल यादव एवं चिराग गौतम
कृषि महाविद्यालय, उम्मेदगंज कोटा, कृषि अनुसंन्धान केन्द्र, उम्मेदगंज कोटा एवं कृषि विश्वविद्यालय, कोटा

परिचय: पपीता पोषक तत्वों से भरपूर अत्यन्त स्वास्थ्यवर्धक पाचक जल्दी तैयार होने वाला फल है। घर के पिछवाड़े, गृह वाटिका, घर की छत एवम उद्यानों में पूरक पौधे से लेकर बड़े उद्यानों के रूप में इसका उत्पादन किया जा सकता है। पपीता मे मुख्यतय लगने वाले रोगो मे तना या पादप विगलन, विषाणु जनित रोग, फल सडन, श्यामव्रण आदि रोग है जिनमे से तना या पादप विगलन एक प्रमुख रोग है।

तना विगलन रोग

पपीते के पौधा पर होने वाले रोगों मे से तना या पादप विगलन रोग एक अधिक नुकसान पहुचाने वाला कवक जनित रोग है इस रोग को पपीते की आद्रगलन, स्तम्भ मूल संधि विगलन, मुलन विगलन इत्यादी नामों पुकारा जाता है। भारत में इस रोग का प्रकोप, वर्षा ऋतु मे जून से अगस्त तक होता है। यह मौसम में अनुकूल वातावरण मिलने पर महामारी का रूप धारण करके सभी पौधों को मार देता है और उद्यान की भूमी दुबारा पपीता रोपण के लिए अयोग्य हो जाती है।

रोग के लक्षण : रोग के आरम्भिक लक्षण भूमी तल के समीप तनें की छाल पर मुलायम, स्पंजी, जल सिक्त धब्बों के रूप में प्रकट होते है।यह धब्बे ऊपर की और फेलते है तनें के चारो और से घेर कर मेखला बना देते है। पौधो के ऊपर की पत्तियाँ मुरझाकर नीचे की और लटकने लगती है और उनका रंग पीला पड़ जाता है तथा यह परिपक्वता से पहले ही नीचे गिर जाता है। तने के रोगी ऊतक सड़न के कारण गहरे भूरे या कालें रंग के हो जाते है। रोग ग्रस्त पौधों के तने के आधार पर मृदूतकी उत्तकों के विघटन के कारण पूरा पौधा वायु के दबाव के आधार से टूटकर गिर जाता है। यदि रोगी पौधे के तने की छाल को हटाकर देखा जाये तो अन्दर के उत्तक सूखें एवं मधुमक्खी के छत्तों के समान दिखाई देते है। रोगी तनो पर सड़न भूमी से से ऊपर तीन से चार फिट तक के भाग पर तथा नीचे जडों तक फैल सकती है। ग्रसित जड़े मुलायम पड़कर सड़ने लगती है। मूल विगलन के कारण सम्पूर्ण मूलतत्रं नष्ट हो जाता है। कम उग्र संक्रमण में तने में केवल एक और सड़न पैदा हो सकती है जिससें पौधा छोटा सह सकता है तथा फल सिकुड़े हुए उत्पन्न होते हैं और अन्त में पौधे की धीरे–धीरे मृत्यु हो जाती है। प्रायः प्रारूपिक तना विगलन सामान्य रूप से दो या तीन वर्ष पुराने पौधो पर पर उत्पन्न होता है परन्तु कवक द्वारा प्रारम्भ मे ही संक्रमण कर नये पौधे भी इस रोग से मरते हुए देखे गये है, नर्सरी में पपीते की पौधौ का आद्रगलन रोग भी सामान्यता रूप से पाया जाता है कभी–कभी पुराने पौधों की संक्रमणके बाद शीघ्र मृत्यु नही होती अपितु यह कुछ समय तक बने रहते है।

रोग चक्र : पपीते का पादप विगलन एक मृदोड़ रोग है इस रोग को उत्पन्न करने वाला कवक पिथियम विकल्पी परजीवी होते है। परजीवी की अनुपस्थिति में यह मृदा में पड़े पपीते के मलबे पर उत्तरजीवी रहता है। इस कवक की भूमी में छूटे पपीते के अवशेषो मे वृद्धि अधिक तेजी से होती है। कवक के बीजाणुओं का प्रकीर्णन मृदा के स्थानान्तरण, रोगी मलबे एवं जल प्रवाह के माध्यम से होता है प्रायः यह भूमी की उपरी सतह पर रहते है। और बीजाकुरण पर सक्रंमण कर आद्रगलन उत्पन्न कर सकते है अथवा अनुकूल वातावरण होने पर भूमी के उपर तने के आधार पर सक्रंमण करके उत्तको का विघटन कर देते है।

अनुकूल वातावरण : भूमि के तने के आधार पर चारों ओर अधिक नमी रोग के विकास एवं अत्यन्त सहायक होती है। रोग के विकास के लिए अनुकूलतम तापमान 36 डिग्री सेन्टीग्रेड होती है। नर्सरी या पौधशाला मे पौधों की अधिक संख्या होने से सूर्य की की किरणों एवं वायु का संचार में कमी हो जाती है, जिससे आद्रता अधिक बनी रहती है, और कवक तेजी से वृद्धी करता है। मृदा मे शाकीय पदार्थो का अधिक मात्रा में एकत्र होना तथा पपीते के बगीचें में जल निकास का उचित प्रबन्ध न होना रोग की वृद्धि मे सहायक होता है।

नियत्रण के उपाय

1. यह रोग जल क्रांति खेती मे अधिक होता हैं, अतः पपीते के बगीचे में जल निकास का उचित प्रबन्ध होना चाहीए ।
2. बगीचे मे रोगी पौधे दिखाई देते ही उन्हें सावधानी से जड़ सहित उखाड़ कर जला देना चाहीए।
3. रोग दिखाई देने पर बोरडेक्स मिश्रण 1 प्रतिशत बनाकर तने 50–100 मिली प्रति पौधे के हिसाब से तने पर छिडकाव करें। तथा तने पर बोरडेक्स पेस्ट से पुताई करने से रोग का नियंत्रण किया जा सकता है।

4. बोरडेक्स मिश्रण बनाने के लिये 1 किलो नीला थोथा, 1 किलो बुझा हुआ चुने को अलग अलग पानी मे घोलकर नीला थोथा के घोल को चुने के घोल मे मिलावें व इस घोल का आयतन 100 लीटर करे ले। बोरडेक्स पेस्ट बनाने के लिए लिये 1 किलो नीला थोथा, 1 किलो बुझा हुआ चुने को 10 लीटर पानी मे घोल तैयार करे ।
5. पौधों पर रोग का प्रभाव अधिक हो जाने की अवस्था में पेड़ को जड़ सहित निकाल कर नष्ट कर देना आवश्यक है। उसी गड्ढे में फिर से दूसरा पेड़ कुछ समय तक नहीं लगाना चाहिये।
6. नर्सरी में पौध को रोग से बचाने के लिये मिट्टी को 3 ग्राम ताम्रयुक्त कवकनाशी प्रति लीटर पानी की दर के घोल से तर कर देवें और बीजों को थाइरम 3 ग्राम प्रति किलों बीज की दर से उपचारित कर बोयें।
7. रोग दिखाई देते ही रोग्रस्त भाग को पूरी तरह हटाकर कॉपरआक्सीक्लोराइड 0.3 प्रतिशत का लेप या छिड़काव कर देवें।

आद्रगलन रोग : यह नर्सरी का बड़ा ही गंभीर रोग है। इसका आक्रमण नव अंकुरित पौधों में होता है। इस रोग में पौधों का तना जमीन के पास से सड़ जाता है और मुरझा कर गिर जाता है। प्रायः छोटे पौधे पर ही इसका आक्रमण अधिक होता है, बड़े होने पर पौधे इसके लिए प्रतिरोधी हो जाते हैं। यह रोग गर्म एवं आर्द वातावरण में तथा पौधे काफी घने होने लगें हो तो अधिक होता है।

रोकथाम

1 बीजों को थायरम, डाईथेन एम–45 नामक दवाओं से 3 ग्राम प्रति किग्राग्राम की दर से उपचारित करके बोना चाहिए।
2 जल निकास का अच्छा प्रबन्धन करना चाहिए।
3 घने तथा अनाव यक पौधों को पौध ाला से निकाल देना चाहिए।
4 एक–एक सप्ताह के अन्तर पर कॉपर कवक नाशी 0.2 प्रतिशत का छिड़काव करना चाहिए।

एन्थ्रेक्नोज : इसका आक्रमण तना, पत्तियों और फलों पर होता है। इसके कारण भूरे रंग के लम्बे धब्बे बन जाते हैं। वातावरण में आर्द्रता बढ़ने पर धब्बे तीव्र गति से बढ़कर एक–दूसरे में मिल जाते हैं, जिसके कारण फल सड़ जाते हैं। पहले छोटे और पनीले धब्बे निकलते हैं। जैसे ही कवक फल के अन्दर बढ़ने लगती है, फलों से दूध निकलता है जो फलों को चिपचिपा–सा ढीला बना देता है।

रोकथाम

1 रोगी पौधों पर ब्लाइटॉक्स–50 (0.15 प्रतिशत) का छिड़काव करना चाहिए।
2 1 किग्राग्राम डाइथेन एम–45 प्रति 500 लीटर पानी वाले घोल के छिड़काव से काफी अच्छी रोकथाम होती है।

मोजेक रोग : ग्रसित पौधों की पत्तियाँ छोटी तथा सिकुड़ जाती हैं तथा रोग ग्रस्त पत्तियों पर फैले हुए दाग पड़ जाते हैं। पौधे पर फूल–फल नहीं बनते हैं। कुछ समय में पौधा मर जाता है। यह विषाणु रोग है जो एफिड द्वारा फैलती है।

रोकथाम

1 सभी रोग ग्रस्त भागों तथा सम्पूर्ण पौधे को जलाकर नष्ट कर देना चाहिए।
2 रोग को फैलने से रोकने के लिए 250 मि.ली. मैलाथियॉन 50 ई. सी. 250 लीटर पानी में घोलकर 15 दिन के अन्तर पर तीन छिड़काव करने चाहिए।
3 पपीते के बाग में रोग फैलने की दशा में अन्तशस्य फसल नहीं लेवें और बगीचे को पूर्ण साफ रखना चाहिए।

फल विगलन रोग : यह रोग सामान्यतया भण्डार गृहों तथा विपणन के समय उत्पन्न होता है। ग्रसित फल मुलायम पड़ जाते हैं तथा इनमें पनीला सड़न पैदा हो जाता है, कभी–कभी फलों पर काले रंग के धब्बे बन जाते हैं। अधिक आर्द्रता युक्त गर्म स्थानों पर यह रोग तीव्रता से फैलता है।

रोकथाम

1 फलों का संग्रहण करते समय फल की सतह पर किसी प्रकार की क्षति नहीं आनी चाहिए।
2 फलों को भण्डारण से पूर्व 20 मिनट के लिए 46 से 49 डिग्री से. तक गर्म पानी में डूबाने से कवक नष्ट हो जाती है।
3 ग्रसित फलों को भंडारण कक्षों से निकाल कर नष्ट कर देना चाहिए।

हाइड्रोजैल का शुष्क क्षेत्रों में महत्व

अनुज कुमार एवं जे. पी. तेतरवाल
कृषि अनुसन्धान केन्द्र, कोटा, कृषि विश्वविद्यालय, कोटा

हर साल कम होती बारिश और घटते भूमिगत जल स्तर की वजह से जलसंकट की समस्या बढ़ रही है। आवश्यकतानुसार सिंचाई सही समय पर न होने से फसल को नुकसान पहुंचता है। पौधों में पानी की कमी की स्थिति तब पैदा होती है, जब मिट्टी में पानी की आवश्यक मात्रा उपलब्ध नहीं होती। पौधों को पर्याप्त पानी न मिले तो इससे प्रकाश संश्लेषण पर प्रभाव पड़ता है। पौधों के विकास और उत्पादकता में गिरावट आ जाती है। ऐसी परिस्थितियों को देखते हुए कृषि क्षेत्र में हाइड्रोजैल तकनीक किसानों के लिए उपयोगी समाधान के रूप में सामने आई है

बदलते जलवायु के कारण विभिन्न क्षेत्रों में औसतन बारिश का अनुपात घटा है। दो बारिश के बीच की अवधि भी बढ़ जाती है। बारिश की कमी के कारण सिंचाई के लिए पर्याप्त पानी उपलब्ध नहीं हो पाता। इससे फसल सुखने लगती है। इसलिए अब जरूरी हो गया है कि खेती में इस तरह की तकनीकों को अपनाया जाए, जिससे कम पानी में फसलों से अधिकतम लाभ लिया जा सके।

पौधों में जल तनाव की स्थिति : जल की जरूरी मात्रा के उपलब्ध न होने पर उत्पन्न होती है, जिससे पौधो के प्रकाश संश्लेषण क्षमता पर असर पडता है। यदि तनाव जारी रहा तो, पौधे की वृद्धि, और उत्पादकता में भी कमी देखी जा सकती है। पौधों की उत्पादकता पर जल तनाव के प्रभाव को नियंत्रित करने के लिए, विभिन्न जैव प्रौद्योगिकी तकनिकी की सहायता ली जा रही है, तथा यह भी देखा जा रहा है की फसलों की उपज और गुणवत्ता में कोई कमी नहीं आये। वर्तमान समय में, इस तरह की परिस्तिथियों को देखते हुए कृषि क्षेत्र में, जल के उपयोग में तकनीकी का प्रयोग समय की मांग बनता जा रहा है, जिसमे हाइड्रोजेल तकनिकी किसानों के लिए एक उपयोगी समाधान के रूप में सामने आया है। हाइड्रोजेल तकनिकी, पेट्रोलियम विज्ञानं पर आधारित एक तकनिकी है, जो धीरे–धीरे प्रचलन में आ रही है।

हाइड्रोजैल क्या है ?

हाइड्रोजेल एक प्रकार का हाइड्रोफिलिक समूह के साथ क्रॉस–लिंक्ड पॉलीमर (बहुलक) है, जो पानी में घुले बिना ही, बड़ी मात्रा में जल अवशोषित करने की क्षमता रखता है। हाइड्रोजेल में, जल अवशोषण की क्षमता हाइड्रोफिलिक कार्यात्मक समूहों के द्वारा ही उत्पन्न होती है। पॉलिमर हाइड्रोजेल वास्तव में, मिट्टी के माध्यम से मिट्टी की पारगम्यता, घनत्व, संरचना, बनावट और पानी के वाष्पीकरण तथा पानी के अंदर जाने की दर को प्रभावित करते हैं। तनाव के दौरान, हाइड्रोजेल पौधों को पानी और पोषक तत्व प्रदान करने का काम करते है।

कैसे काम करता है हाइड्रोजेल : जब मिट्टी में नमी की मात्रा कम होने लगती है,तब हाइड्रोजेल का कार्य शुरू होता है। हाइड्रोजेल अपने कुल वजन का 350–400 गुना ज्यादा पानी अवशोषित कर सकता है। इसकी सबसे अच्छी बात यह होती है कि, यह बार–बार जरूरत पडने पर शुष्क मिट्टी में जल को अवशोषित करके नमी बनाये रखता है तथा यह प्रकिया लम्बे समय तक चलती रहती है। जब फिर से पानी के संपर्क में आता है, तो यह पानी को स्टोर करने की प्रक्रिया को दोहराता है। हाइड्रोजेल, मिट्टी में प्रथम इस्तेमाल के बाद 2–5 साल तक के लिए कारगर होता है तथा यह समय के साथ विघटित भी हो जाता है, जिससे मिट्टी के प्रदूषित होने के भी कोई संभावना नहीं होती है। हाइड्रोजेल 40–50 डिग्री सेल्सियस के तापमान में भी सुगमता से कार्य कर सकता है। बीज अंकुरण, किसी भी पौधे के प्रारंभिक विकास में सबसे महत्वपूर्ण चरण माना जाता है। सफल अंकुरण पानी की उपलब्धता पर निर्भर करता है तथा मुख्य रूप से शुष्क और अर्ध–शुष्क क्षेत्रों में मिट्टी के नमी के जरूरी स्तर को नियमित रूप से बनाये रखना आवश्यक होता है। हाइड्रोजेल पॉलिमर मिट्टी में अपनी जलधारण क्षमता के द्वारा, पौधों में जल तनाव की स्तिथि को आने से रोकता है तथा लंबे समय के बाद मुरझान बिंदु (विल्टिंग पॉइंट) तक पहुंचाता है।

मृदा में डालने पर पूसा हाइड्रोजेल इसी का एक हिस्सा बन जाता है। इसके चीनी के दानों जैसे कण जड़ क्षेत्र में सिंचाई अथवा वर्षा उपरांत अतिरिक्त जल, जो कि पौधों को अनुपलब्ध रहता है, को ग्रहण कर फूल जाते हैं। पौधों के विकास के दौरान जल की कमी से उत्पन्न होने वाले तनाव की स्थिति में जड़ें इन फूले हुए कणों से आवश्यकतानुसार पानी व पोषक तत्व लेती है।

हाइड्रोजेल उपचारित (बाएं) एवं अनुपचारित (दाएं) दशाओं में गेहूं की जड़ का विकास

स्रोत : कृषि रसायन संभाग भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली

हाइड्रोजेल तकनिकी के कुछ प्रमुख बिंदु

- हाइड्रोजेल में अम्लीयता एवं क्षारियता का अनुपात बराबर होता है जिससे मिट्टी में यह उदासीन होता है और कोई हानिकारक प्रतिक्रिया नहीं करता है।
- उच्च तापमान में भी अच्छे से काम करता है, जिससे राजस्थान जैसे शुष्क एवं अर्ध–शुष्क क्षेत्रों के लिए बहुत ही उपयोगी है।
- यह अपनी क्षमता से कई गुना अधिक जल को धारण कर सकते है, जो इन्हें सूखे,शुष्क एवं अर्ध–शुष्क क्षेत्रों के लिए सबसे ज्यादा उपयोगी बनाती है।

- हाइड्रोजेल मिट्टी के भौतिक गुणों जैसे– छिद्रता, घनत्व, जल धारण क्षमता, मिट्टी की पारगम्यता, तथा निकासी दर, आदि को बेहतर बनाता है।
- हाइड्रोजेल वाष्पीकरण नियंत्रित करके मृदा एवं पौधे में नमी को बचाकर, फसलों की सिंचाई आवश्यकताओं को कम करता है।
- हाइड्रोजेल मिट्टी में जैविक गतिविधियों को भी बढ़ाता है, जो जड़ क्षेत्र में अश्वक्सीजन की उपलब्धता को बढ़ाती हैं।
- हाइड्रोजेल, बीज के अंकुरण तथा उसके उभरने की दर में भी सुधार करता है।
- हाइड्रोजेल, 30–40 प्रतिशत तक सिंचाई तथा उर्वरक के उपयोग में भी कमी लाता है।
- हाइड्रोजेल, मृदा अपरदन, तथा जल के सतही लीचिंग को भी रोकता है।

कितनी मात्रा में उपयोग करें ?

- सर्वोत्तम परिणाम के लिए हाइड्रोजेल को बुवाई के समय प्रयोग करना चाहिए। यह बेहतर अंकुरण और जड़ फैलाव में मदद करेगा।
- सामान्यत: एक एकड़ के लिए 1.5 किग्रा. 2.0 किग्रा. हाइड्रोजेल के उपयोग की सलाह दी जाती है लेकिन यह स्थान, मिट्टी एवं जलवायु पर भी निर्भर करता है।
- रेतीली मिट्टी के लिए, 2.5 किग्रा/एकड़ में 18 से 20 से.मी. तक की गहराई में हाइड्रोजेल का उपयोग किया जाना चाहिए।
- काली मिट्टी (क्ले) के लिए 2.0 . 2.5 किग्रा/एकड़ में 8–10 से. मी. तक की गहराई में हाइड्रोजेल का उपयोग किया जाना चाहिए।
- खेतो को तैयार करने के बाद, 2.0 किग्रा हाइड्रोजेल को 10–12 किग्रा महीन सूखी मिट्टी के साथ अच्छे से मिलाना चाहिए तथा सम्पूर्ण मिश्रण (मिट्टी तथा हाइड्रोजेल) को बीज के साथ ही खेतों में डालना चाहिए, जिससे अच्छे परिणाम मिलने की संभावना बढ़ जाती है।
- नर्सरी पौधों में, 2–5 ग्राम हाइड्रोजेल को 1 वर्ग मी. के आकार में 5 से.मी. मिट्टी की गहराई पर प्रयोग करना चाहिए।
- शुष्क एवं अर्ध–शुष्क क्षेत्रों के लिए 4–6 ग्रा./किग्रा मिट्टी में हाइड्रोजेल का उपयोग किया जाना चाहिए।

हाइड्रोजेल पॉलीमर के लाभ

- हाइड्रोजेल पॉलीमर बीज की अंकुरण क्षमता को बढ़ाता है।
- सीडलिंग के साथ हाइड्रोजेल मिलाने पर पौधा लगातार वृद्धि करता है
- पानी के वाष्पीकरण को रोकता है और मिट्टी में नमी को बनाए रखता है।
- हाइड्रोजेल पॉलीमर के प्रयोग से 25 प्रतिशत पानी की बचत होती है
- फफूंदीनाशक के साथ हाइड्रोजेल का प्रयोग करने से पौधे की जड़ों पर इसका असर लंबे समय तक रहता है।
- पौधों का अच्छा विकास होता है फसल की पैदावार बढ़ती है।
- पानी की कमी वाले क्षेत्रों में हाइड्रोजेल का प्रयोग खेत में पानी को दुरुस्त रखता है।
- बलुई मिट्टी व ढलान वाली जगहों में हाइड्रोजेल का प्रयोग पानी को टिकाए रखता है।
- हाइड्रोजेल पानी के साथ पोषक तत्वों को भी बांधे रखता है। इसे पौधे अपनी मर्जी के मुताबिक लेते रहते हैं।
- भूमि का कटाव बंद होने से मिट्टी की गुणवत्ता भी बढ़ जाती है।

हाइड्रोजेल तकनिकी की कुछ सीमाएं

- खारी (नमकयुक्त) मिट्टी के लिए हाइड्रोजेल का उपयोग कुछ हद तक सीमित है, जो उसकी जल धारण क्षमता में कमी का कारण हो सकता है।
- हाइड्रोजेल की कीमत इसके उपयोग को सीमित बनाती है,क्यूंकि छोटे किसान द्वारा इसे खरीदने में आर्थिक समस्या एक प्रमुख कारण है।
- हाइड्रोजेल का प्रयोग आसुत जल साथ आदर्श माना गया है, जबकि वास्तविकता में सिचाई जल में विभिन्न प्रकार के नमक एवं रसायन होते है, जिससे उसकी क्षमता में कमी आती है।

तालिका : पूसा हाइड्रोजेल का उपज एवं जल उत्पादकता पर प्रभाव

फसल	हाइड्रोजेल दर (किग्रा/है.)	उपज वृद्धि (प्रतिशत में)	सिंचाई में बचत संख्या	शुद्ध लाभ (रु./है.)
मूंगफली	2.5	12.7	4-5	4000
आलू (शरद)	5.0	21.0	4	33328
आलू (बसंत)	5.0	6.3	4	5224
आलू (बसंत)	5.0	16.3	-	21400
सरसों	2.5	14.3	बारानी	2880
सोयाबीन	5.0	47.5	बारानी	4700
प्याज	2.5	67.9	बारानी	11900
टमाटर	2.5	52.3	1	26301
गन्ना	2.5	13.1	-	8300
गेहूँ	2.5	18.3	सीमित	4198

स्रोत– कृषि रसायन संभाग भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली

सावधानियाँ

- पैकेट को अच्छी तरह से बंद रखें ताकि नमी इसे प्रभावित न कर सके।
- बुआई या पौध रोपण के समय हाइड्रोजेल–मृदा मिश्रण को पूर्ण रूप से नमी रहित सूखी मिट्टी में तैयार करें।
- बीज व मृदा के साथ जैल का समांग मिश्रण करना वांछनीय है।
- जैल – मृदा मिश्रण का खेत में समान रूप से प्रयोग सुनिश्चित करें ।
- जैल को बच्चे की पहुँच से दूर रखें तथा प्रयोग के बाद भलीभांति हाथ धोएं।
- नमी रहित स्थान पर ही इसका भंडारण करें।

निष्कर्ष : हाइड्रोजेल के उपयोग से शुष्क और अर्ध–शुष्क क्षेत्रों में मिट्टी में सुधार होता है तथा मिट्टी की जल धारण क्षमता में वृद्धि होती है। हाइड्रोजेल फसल के बेहतर विकास के लिए अनुकूल वातावरण प्रदान करता है। इस प्रकार, निकट भविष्य में, जल तनाव, शुष्क एवं अर्ध–शुष्क क्षेत्रों के लिए हाइड्रोजेल एक उपयोगी साधन सिद्ध होने वाली तकनिकी है तथा पर्यावरणीय स्थिरता के साथ कृषि उत्पादकता बढ़ाने के लिए आर्थिक द्रष्टि से भी यह तकनिकी संभव विकल्प हो सकता है।

आधुनिक खेती में फसल विविधीकरण का महत्व

देवी लाल किकरालियाँ, उमा नाथ शुक्ल,अनुज कुमार एवं विजयलक्ष्मी यादव
स्वामी केशवानंद राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय, बीकानेर,
कृषि विश्वविद्यालय, जोधपुर, कृषि विश्वविद्यालय, कोटा एवं श्री कर्ण नरेंद्र कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर

टिकाऊ उत्पादन के लिए कृषि में फसल विविधीकरण एक नया पैटर्न है। भारतीय दृष्टिकोण में फसल विविधीकरण को यह माना जाता है की पारम्परिक रूप से उगाई जाने वाली कम लाभप्रद फसलो के स्थान पर अधिक लाभप्रद फसलो को लिया जाये। अर्थात वर्तमान फसल या फसल प्रणाली से दूसरी फसल या फसल प्रणाली की ओर बढ़ना। फसल विविधीकरण का उद्देश्य किसी दिए गए क्षेत्र में विभिन्न फसलों के उत्पादन में एक व्यापक विकल्प देना है ताकि विभिन्न फसलों पर उत्पादन संबंधी गतिविधियों का विस्तार किया जा सके और जोखिम को कम किया जा सके अर्थात फसल विविधीकरण कृषि समुदाय के आ्थक स्तर में सुधार करने के लिए एक महत्वपूर्ण विकल्प है। फसल विविधीकरण और नई किस्मों के समावेश से किसानो की एक ही फसल पर निर्भरता कम हो जाऐगी। किसान के द्वारा एकल फसल पद्धति अपनाने से जलवायु की अप्रत्याशित समस्याओ जैसे कीटो व बीमारियों का प्रकोप, अकस्मात ठंढ और सूखा पड़ना आदि का जोखिम बढ़ जाता है जो कृषि उत्पादन को गंभीर रूप से प्रभावित कर सकता है।

फसल विविधिरण की आवश्यकता क्यों हैं ?

वर्तमान समय के इस दौर में किसान कृषि सेक्टर में बेहतर उत्पादन लेने के लिए पारंपरिक फसलों में अत्यधिक मात्रा में उच्च उत्पादक क्षमता वाले प्रसंसाधित बीजों का इस्तेमाल, कृत्रिम खादों एवं कीटनाशकों और खरपतवारनाशक व फफूंदनाशी का प्रयोग कर रहे है। इससे कीट और खरपतवार में धीरे– धीरे उनके खिलाफ प्रतिरोधक क्षमता उत्पन्न हो जाती है। इससे फसलों के उत्पादन पर प्रभाव पड़ता है। इसके अलावा कृत्रिम उर्वरकों से मृदा की उपजाऊ शक्ति, कृषि पैदावार, जल एवं वातावरण को दूषित करते है। इससे किसानों की कृषि लागत भी बढ़ रही है। और फसल उत्पादन भी प्रभावित हो रही और किसानों की आय भी घट रही है। ऐसे में इस अवस्था के निवारण के लिए फसल विविधिरण की आवश्यकता है। किसानों द्वारा उनके खेतों में एक साथ कई नई फसलों को फसल चक्रण बनाकर फसलों का उत्पादन करना है। फसल विविधिकरण के माध्यम से इन सारी समस्याओं से निजात पाया जा सकता है। और साथ में किसानों को समिति संसाधन से एक ही खेत से अतिरिक्त आय भी प्राप्त होती है।

फसल विविधिकरण विधि के प्रकार : फसल विविधिकरण विधि के अंतर्गत भारत में मुख्य फसल प्रणाली में क्रमिक फसल, एकल फसली व्यवस्था, अंतर फसली, रिले क्रॉपिग, मिश्रित अंतर फसली, अवनालिका फसल प्रणाली प्रचलित है। अधिकतर किसान आजीविका और आय के साधनों को बढ़ाने के हेतु मिश्रित फसल प्रणाली के साथ पशुधन प्रणाली का भी इस्तेमाल करते हैं।

फसल चक्रण : किसी खेत में भिन्न–भिन्न प्रकार की फसल लगाकर फसल चक्रण किया जाता है। फसल चक्रण से पैदावार के साथ साथ मृदा की उर्वरा शक्ति भी बनी रहती है। फसल चक्रण में हरी खाद वाली फसल जैसे ढेंचा या सनई और दलहनी फसल जैसे मूंग, लोबिया इत्यादि को सम्मिलित करने से कम उर्वरक की आवश्यकता होती है।

कृषि वानिकी : फसलों और पशुओं के साथ पेड़ों की खेती करना कृषि वानिकी है और कृषि वानिकी के बेहतर प्रयोग से बेहतर पोषण, स्वास्थ्य, आर्थिक विकास, पारिस्थितिक तंत्र एवं आजीविका सुधारने में किसानों को मदद मिलती है। कृषि वानिकी प्रणालियों से मृदा संवर्धन, जैव विविधता संरक्षण, कार्बन पृथक्करण एवं वायु और जल गुणवत्ता में सुधार करता है।

कृषि–बागवानी : बागवानी फसलों के बीच में दलहनी, दाने वाली फसल, तिलहन या सब्जियां लगाने से किसानों को अतिरिक्त आय, खेत में कम खरपतवार व मृदा अपरदन से संरक्षण मिलता है। जैसे किसान किन्नू के बाग में खरीफ में मक्का, ज्वार, कपास, मूंग अथवा लोबिया लगाए और रबी में गेहूं, चना व लोबिया लगाए। और जब किन्नू के पेड़ों का तीन से चार साल बाद अच्छा विकास हो जाये, तब किसान को केवल चारे के लिए फसल जैसे लोबिया, ज्वार लगायें।

फसल विविधीकरण के लाभ

- फसल विविधिकरण से कृषि क्षेत्र में कीड़े, बीमारियां, खरपतवार और मौसम संबंधी जोखिमों की संभावना कम होती है। और खेती में खरपतवारनाशी व कीटनाशी की कम मात्रा की आवश्यकता होती है।
- फसल विविधीकरण से प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण भी होता है। और पर्यावरण में भी सुधार होता है।
- फसल विविधीकरण में चावल–गेहूं की फसलों के साथ फलियां लगाना चाहिए। यह फलियां मिट्टी की उपजाऊ शक्ति को बनाए रखने के साथ वायुमंडलीय नाइट्रोजन की मात्रा भी नियतन करती है।
- दलहनी फसलें मिट्टी में जैव विविधिताओं को बढ़ाती है, जिससे मिट्टी की पानी सोखने की क्षमता बढ़ती तथा संरचना अच्छी बनती है।
- फसल विविधीकरण में मिश्रित मौसमी सब्जियों की खेती छोटे किसानों के लिए बहुत उपयोगी साबित हो सकती है।
- फसल विविधिकरण में किसान कृषि रासायनों के एक बार के खर्च में एक से अधिक फसल ले सकता है। और अतिरिक्त आय प्राप्त कर सकता है।
- फसल विविधीकरण से खेत में जैव विविधता बढ़ जाती है, जो किसी भी पारिस्थितिकी तंत्र की बेहतर स्थिरता के लिए महत्वपूर्ण है।

- फसल विविधीकरण जलवायु परिवर्तन व मौसम सम्बंधी प्राकृतिक आपदाओं के जोखिम को कम करने में मदद करता है।
- फसल विविधिकरण में पशुपालन या पशु कृषि विज्ञान की शाखा भी शामिल है, जिसके अंतर्गत पालतू पशुओं से प्राकृतिक खाद, भोजन, पशुधन को बढ़ाने और इनके चयनात्मक प्रजनन, पशु प्रबंधन तथा देखभाल और लाभ के लिए पशुओं के आनुवंशिक गुणों एवं व्यवहारों को विकसित किया जाता है। और इनसे अतिरिक्त लाभ कमाने में मदद मिलती है।

छोटे किसानों की बढ़ेगी आय

किसान पारंपरिक फसलों की खेती को छोड़ अन्य न फसलों को उगाए, जिससे किसानों की आय बढ़ें। किसान अपने खेत में अन्य नई नई प्रकार की अलग–अलग फसलों को एक साथ लगाकर अधिक मुनाफा प्राप्त कर सकते है। इसके लिए किसान को मौजूदा फसल के प्रणाली में उच्च मूल्य वाली फसलों जैसे कि मक्का, दाल, के साथ कई अन्य नई फसलों का विविधीकरण करना चाहिए।

मिट्टी की उपजाऊ शक्ति को बढ़ाने में कारगर

फसल विविधीकरण मिट्टी की उपजाऊ शक्ति कायम रखने के लिए कारगर है। इसमें एक ही खेत में एक से अधिक फसल लगाने से कम लागत में अधिक उत्पादन लिया जा सकता है। इससे मिट्टी की उपजाऊ शक्ति भी बढ़ेगी और खेत बंजर होने से बचते है।

चुनौतियाँ

- देश में बहुतायत फसल क्षेत्र पूरी तरह से वर्षा पर निर्भर है।
- भूमि और जल संसाधनों जैसे संसाधनों का दोहन और अधिकतम उपयोग, पर्यावरण और कृषि की स्थिरता पर नकारात्मक प्रभाव डालता है।
- जीवाष्म ईंधन के बाद मानव निमित ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन में पशु कृषि का दूसरा सबसे बड़ा योगदान है और यह वनों की कटाई, जल प्रदूषण, वायु प्रदूषण और जैव विविधता के नुकसान का एक प्रमुख कारण है।
- उन्नत खेती द्वारा बीज और पौधों की अपर्याप्त आपूत में सुधार करना।
- कृषि के आधुनिकीकरण और मशीनीकरण के पक्ष में भूमि का विखंडन।
- ग्रामीण सड़क, बिजली, परिवहन, संचार आदि कमज़ोर बुनियादी ढाँचे।
- फसल कटाई के पश्चात् अपर्याप्त प्रौद्योगिकियों और खराब होने वाले बागवानी उत्पादों के कटाई के पश्चात् उनका प्रबंधन करने के लिये अपर्याप्त बुनियादी ढाँचे।
- कमज़ोर अनुसंधान– उनका विस्तार – किसान संबंध।
- किसानों के बड़े पैमाने पर निरक्षरता के साथ अपर्याप्त प्रशिक्षित मानव संसाधन।
- अधिकांश फसल और पौधों को प्रभावित करने वाले रोगों और कीटों की अधिकता।
- बागवानी फसलों के लिये खराब डेटाबेस।
- वर्षों से कृषि के क्षेत्र में निवेश में कमी देखी गई है।

''अभिनव कृषि'' अंकवार प्रकाशित होने वाली विषय सामग्री

अंक	प्रकाशन माह	विषय–विशेषांक
1	जून	खरीफ फसल विशेषांक, खरीफ फसलों में समन्वित कीट, रोग व खरपतवार, प्रबंधन, मृदा एवं जल संरक्षण
2	सितम्बर	रबी फसल विशेषांक, रबी फसलों में समन्वित कीट, रोग व खरपतवार प्रबंधन, उन्नत कृषि उपकरण
3	दिसम्बर	सिंचाई प्रबंधन, मृदा स्वास्थ्य प्रबंधन, जैविक खेती, समन्वित कृषि प्रणाली, आधुनिक डेयरी, मधुमक्खी पालन, मशरूम उत्पादन, एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन
4	मार्च	जायद खेती, संरक्षित खेती, हाई–टेक बागवानी, फल–फूल, सब्जी उत्पादन, मृदा प्रबंधन, पशुपालन प्रबंधन, फल सब्जी परिरक्षण एवं खाद्य प्रसंस्करण

❋❋❋

गेहूँ मे गुणवत्तायुक्त बीजोत्पादन तकनीक

आर. के. महावर, हनुमान सिंह, उदिती धाकड एवं पूनम फोजदार
कृषि महाविद्यालय, हिंडोली, बूंदी एवं कृषि महाविद्यालय, कोटा, राजस्थान

भारत वर्ष की खाद्यान्न फसलों में गेहूँ एक महत्वपूर्ण रबी फसल है । यह विश्व मे ऊगाये जाने वाली फसलों मे मक्का के बाद दूसरा स्थान रखता है। भारत, चीन के बाद विश्व में गेहूँ का दूसरा सबसे बड़ा उत्पादक है। आधुनिक कृषि के क्षेत्र में भी उन्नत एवं गुणी बीज एक आवश्यक आदान है , जोकि किसी किस्म की पूरी क्षमता का उपयोग करने में मदद करते हैं। प्रायः भारत में किसान अगले साल की बुवाई के लिए वर्तमान फसल से ही अच्छे बीजों का चयन कर के उन्हे सन्चित करते है, जो आगे चलकर अच्छा प्रदर्शन नहीं कर पाती। इसीलिए किसानों की बीज आपूर्ति अच्छी गुणवत्ता वाले बीज से होना कृषि की दृष्टि से आवश्यक है । अच्छी गुणवत्ता के बीज का उत्पादन करने के लिए उचित तकनीक का पालन करना चाहिए। अतः किसानों को पहुचने वाला बीज न केवल उच्च आनुवंशिक शुद्धता का होना चाहिये बल्कि उच्च भौतिक, शारीरिक और स्वास्थ्य की गुणवत्ता मे भी खरा उतरना चाहिए।

भूमि चयन एवं उसकी तैयारी: उचित भूमि का चयन बीज उत्पादन के लिए बहुत जरूरी है। गेहूँ के गुणवत्ता युक्त बीज उत्पादन के लिए ऐसी भूमि का चयन करना चाहिये जो समतल एवं उपजाऊ हो, और उस ने पिछले फसल चक्र को पूरा किया हो। स्वेच्छा जनित पौधे, आपत्ति जनक खरपतवार और मिट्टी जनित रोगों के संक्रमण से बचने के लिए खेत की पिछली फसल के इतिहास कि जानकारी अति–आवश्यक है। स्वाइल टर्निंग प्लाऊ कि सहायता से खेत की पहली जूताई गहरी होनी चाहिये। दूसरी हल्की जूताई बुवाई के पहले की सिंचाई के वक्त करनी चाहिय। कीट की रोकथाम के लिए जूताई के समय बी.एच.सी. का उपयोग लाभप्रद होता है।

बीज का स्त्रोत : आधार एवं प्रमाणित बीज के उत्पादन के लिए क्रमश प्रजनक व आधार बीज का प्रयोग करते है आधार एवं प्रमाणित बीज का उत्पादन बीज प्रमाणीकरण संस्था की निगरानी में होता है। प्रजनक बीज के बोरे में सुनहरे पीले रंग का टैग लगा होता है। जो आधार बीज का उत्पादन करने में उपयोग होता है। आधार बीज के थैली पर प्रमाणीकरण संस्था का सफेद रंग का टैग लगा होता है। जो प्रमाणित बीज का उत्पादन करने में उपयोग होता है। स्त्रोत बीज के ये वर्ग विश्वविद्यालय या प्रमाणीकरण संस्था द्वारा तैयार किये जाते हैं। राज्य बीज प्रमाणीकरण संस्था प्रमाणित बीज उत्पादन का कार्यक्रम स्वीकार करते समय और निरक्षण के समय प्रमाणित बीज उत्पादन वर्ग इन स्त्रोत की जांच करती है।

तालिका : 1 गेहूँ प्रमुख उन्नत किस्में

किस्मों का उपयोग	किस्म
सामान्य बुवाई सिंचित (चपाती गेहूँ)	राज 3077, डब्ल्यू एच 147, जी डब्ल्यू 190, जी डब्ल्यू 322, जी डब्ल्यू 273, जी डब्ल्यू 366, राज– 4037, लोक 1, राज– 3765, एच आई 1544, राज. 4120, राज. 4079
सामान्य बुवाई सिंचित (काठीया गेहूँ) देर से बुवाई सिंचित	राज. 1555, एच आई 8498 (मालव भाक्ति), एमपीओ 1215, राज.6560, एच आई 8737 (पूसा अनमोल), एच आई 8663, एच आई 8713, एच डी 4728 (पूसा मालवी)
देर से बुवाई सिंचित	लोक 1, डब्ल्यू एच 147, राज 3765, राज 3777, एच आई 8498, एम पी 1203, एच डी 2932, राज. 4083, राज. 4238
सामान्य बुवाई कम सिंचित/ असिंचित	एच आई 1500, एच आई 1531, एम पी 3288, सी 306, लोक 1, सुजाता, डी बी डब्ल्यू 110
पेटा का त व बारानी बुवाई	लोक 1, सी–306, सुजाता, मुक्ता, पीबीडब्ल्यू 299, एच डब्ल्यू 2004
क्षारीय एवं लवणीय क्षेत्र	के आर एल 1–4, के आर एल 19, राज. 3077, खारचिया 65 व डब्ल्यूएच 157
गणवान गेहूँ	एच आई 8633 (पोशण), एच आई 8627 (मालव कृति), एच आई 8713 (पूसा मंगल), एच आई 8759 (पूसा तेजस)

किस्म का चयन: विशिष्ट जलवायु एवं पर्यावरण के लिये अनुकूल, आधुनिक तथा जिन किस्मो कि मांग बाजार मे ज्यादा है उनके बीज का उत्पादन कर ना किसानो के लिये लाभकारी है।

तालिका : 2 गेंहूँ बुवाई का समय, अवधि, बीजदर एवं कतारों की दूरी

बुआई की स्थिति	बुआई की अवधि	बीज दर (किग्रा./है)	कतारो की दूरी (सेमी.)
समय पर बुआई के लिये	15 अक्टु. –15 नव.	100–125	22.5
विलम्ब से बुआई के लिये	15 नव.–15 दिस.	125–150	15–18
अत्यधिक विलम्ब से बुआई के लिये	25 दिस. से 10 जन.	150	15

बुवाई की तकनीक : सीड ड्रिल से पन्क्ति मे बुवाई करना एक अच्छा विकलप है। हालांकि पंक्ति रोपण में कम बीज की आवश्यकता, यंत्रीकृत खरपतवार नियंत्रण, आसान निरीक्षण और अन्य प्रकार के पोधों के उखाड़ने की सुविधा, सीधे बीज प्रसारण विधि से ज्यादा लाभप्रद है।

बीज उपचार: बुवाई से पहले, बीज को कार्बेन्डाजिम या थीरम से 2–2.5 ग्राम प्रति किलो ग्राम बीज, के साथ उपचारित करना चाहिए।

उर्वरक प्रबंधन: बुवाई पूर्व खेत के मृदा परीक्षण के परिणामों के आधार पर ही गेहूँ में उर्वरक का प्रयोग करना चाहिए। नाइट्रोजन, फॉस्फोरस और पोटाश की संतुलित मात्रा कुशल बीज उत्पादन के लिए आवश्यक है, क्योंकि इसका प्रभाव बीज विकास एवं बीज की गुणवत्ता पर पड़ता है। औसतन 120 किग्रा नाइट्रोजन, 40 किग्रा फास्फोरस और 40 किग्रा. पोटेशियम एक हेक्टेयर के लिए उप्युक्त है। मिट्टी में जिंक कि कमी होने पर बुवाई के समय 15–20 किग्रा. प्रति हेक्टेयर जिन्क सल्फेट का उपयोग करना लाभप्रद है। पोटाश एवं फॉस्फोरस उर्वरक की कुल तथ नाइट्रोजन कि आधी मात्रा को बुवाई के समयया पहले मिट्टी मे मिलना चाहिये। बाकी बची हुई नाइट्रोजन कि मात्रा को सिंचाई के समय उपयोग करना चाहिये।

तालिका : 3 गेंहूँ में सिंचाई की क्रान्तिक अवस्थाऐं

पहली सिंचाई	क्राउन रुट या ताजमूल अवस्था पर	बुवाई 20–25 के दिन बाद
दूसरी सिंचाई	कल्ले निकलते समय	बुवाई 40–45 के दिन बाद
तिसरी सिंचाई	दीर्घ सन्धि या गांठे बनते समय	बुवाई 60–65 के दिन बाद
चौथी सिंचाई	पुष्पावस्था	बुवाई 80–85 के दिन बाद
पाँचवी सिंचाई	दुग्धावस्था	बुवाई 100–105 के दिन बाद
छठीसिंचाई	दाना भरते समय	बुवाई 115–120 के दिन बाद

सिंचाई प्रबंधन: सामान्य तौर पर किस्म, वर्षा, मिट्टी के प्रकार, जुताई प्रथाओं और पानी के उपयोग के आधार पर 4–6 सिंचाई की आवश्यकता होती है। गेहूँ मे सिंचाई के लिए पानी की उपलब्धता के आधार पर उसके क्रन्तिक चरणों पर सिंचाई करना महत्व पूर्ण है।

पृथक्कणरण की दूरी : गेहूँ के बीज क्षेत्र का संक्रमण के सभी स्रोतों से अलग किया जाना, बीज उत्पादन की बुनियादी बातों में से एक है। पृथक्कणरण की दूरी अन्य गेहूँ के खेत से 3 मीटर रखी जाती है। लेकिन यदि अन्य खेत लूज स्मट बिमारी से संक्रमित होतो यह दूरी 150 मीटर रखी जाती है।

क्षेत्र निरीक्षण : प्रजातीय पहचान के लिये बालियो के निकलने के बाद का सबसे उप्युक्त है जब बीज बनने की प्रक्रिया प्रारम्भ हो गयी हो। साधरणतयः 2 से 3 बार क्षेत्र का निरीक्षण किया जाता है जो कि गुणवत्त बीज पैदा करने के लिये पर्याप्त है। निरीक्षण मे अलगाव क्षेत्र, संक्रमित पौधे, बीज जनित रोगों से ग्रसित पौधे, एक ही किस्म के आनुवंशिक भिन्न, गेहूँ की अन्य किस्मों के प्रकार और हानिकारक खरपतवार का गहनता से अध्यन किया जाता है।

खरपतवार प्रबंधन : खरपतवार के रासायनिक नियंत्रण के लिए बुवाई के तुरंत बाद और फसल उगने से पहले खरपतवार नाशी पेंडीमेथालीन 1 किग्रा. प्रति 750 मिली लिटर पानी की दर से प्रति हेक्टेयर मे स्प्रे करे। चौड़े पत्तेदार खरपतवार को नियंत्रित करने के लिए के लिये 2, 4–डी

500 ग्राम प्रति 750 मिली लिटर पानी की दर, प्रति हेक्टेयर से बुवाई के 30–35 दिन बाद स्प्रे करें।
घास के नियंत्रण के लिए सल्फोसल्फूरॉन (25ग्राम), क्लोडिनाफॉप प्रोपार्जिल (60ग्राम) और फेनाग्जोप्रोप 100 ग्राम प्रति हेक्टेयर का उपयोग करना लाभप्रद है।

शस्य क्रिया एवं अवांछनीय पौधों का निवारण (रोगिंग): अवांछनीय पौधों को हटाना बीज उत्पादन का एक महत्वपूर्ण चरण है, जो रोगिंग कहलाता है। इन अवांछनीय पौधों मे संक्रमित पौधे, बीज जनित रोगों से ग्रसित पौधे, एक ही किस्म के आनुवंशिक वेरिएंट, गेहूँ की अन्य किस्मों के प्रकार और हानिकारक खरपतवार शामिल हैं। यह आभास बीज के विभिन्न प्रकार के आनुवंशिक शुद्धता को बनाए रखने के लिए, तथा बीज को बीजजनित रोगों से मुक्त रखने के लिए किया जाता है। 2 से 3 रोगिंग बीज फसल के प्रमाणिकता के लिये अति आवश्यक है। पहला रोगिंग फूल खिलने के समय तथा दूसरा फूल खिलने के बाद करना चाहिए। पहले दो रोगिंग बहुत महत्वपूर्ण है, क्योंकि केवल कुछ अवांछित पौधे सम्पूर्ण बीज फसल को सन्क्रमित करने के लिये पर्याप्त है। तीसरी या अतिंम रोगिंग फसल के पकने के समय करनी चहिये।

कटाई एवं मड़ाई : यांत्रिक कटाई बीज उत्पादन क्षेत्रों के आम बात है। फसल कटाई के दौरान बीज मे नमी की मात्रा, यांत्रिक क्षति एवं कटाई के उपकरण की सफाई विशेष ध्यान दिये जाने वाले पक्ष है जोकि अन्तिम चरण मे बीज की शुद्धता को बिगाड़ सकते है। बीज फसल कटने के बाद बीज को पुर्व निश्चित नमी तक सुखाया जाता है।

उपज या पैदावार : उन्नत सस्य प्रौद्योगिकियां से गेहूँ की फसल से 50–60 क्विंटल बीज प्रति हेक्टेयर प्राप्त कर सकते हैं यद्यपि बीज की उपज मौसम, प्रजाति, मृदा के प्रकार और सिंचाई सुविधाओं पर निर्भर करती है।

सफाई, प्रसंस्करण एवं भंडारण: बीज प्रसंस्करण मे अदक्ष बीज विभिन्न प्रक्रिया की एक श्रृंखला द्वारा साफ किया जाता है यथाय पूर्व–सफाई, सुखाई, वायु स्क्रीन द्वारा सफाई, लंबाई द्वारा अलगाव, गुरुत्वाकर्षण द्वारा अलगाव, बीज उपचार एवं बैगिंग। बीज की सफाई के बाद इसे थोक भंडारण के लिए भेज दिया जाता है। भन्डारण से पूर्व बीज को अच्छी तरह सुखा लेना चहिये। साधारणतः बीज को 8–10 प्रतिशत नमी की कम स्तिथि मे संग्रहित करना चहिये।
बीज परीक्षण : बीज के एक निश्चित भाग को नमी प्रतिशत, अंकुरण प्रतिशत, प्रजातीय पहचान, स्वास्थ्य की गुणवत्ता आदि के आधार पर आंकलित किया जाता है, जो उस कि गुणवत्ता का धोतक है।

बीज प्रमाणीकरण : बीज उत्पादन के दौरान बीज की गुणवत्ता को प्रभावित करने वाले समस्त कारको को प्रभावी ढंग से नियन्त्रित करने की विधि को प्रमाणीकरण कहते है। प्रमाणीकरण संस्थाएँ हर स्तर पर विभिन्न दूषित कारको को बीज क्षेत्र से अलग करने के लिये किसानो को शिक्षित करते है जिससे बीज कि गुणवत्ता यथावत बनी रहे ।

तालिका : 4 गुणवत्ता के लिये न्यून्तम मानक

कारक	अधिकतम अनुमति सीमा (प्रतिशत)	
	आधार बीज	प्रमाणित बीज
भौतिक शुद्धता न्यूनतम (प्रतिशत)	98.00	98.00
अन्य फसल के बीज (अधिकतम)	10/किग्रा	20/किग्रा
आपत्तिजनक खरपतवार के बीज (अधिकतम)	2/किग्रा	5/किग्रा
अंकुरण न्यूनतम (प्रतिशत)	85.00	85.00
नमी अधिकतम (प्रतिशत)	12.00	12.00

❋❋❋

गाजर घास एक अत्यंत हानिकारक खरपतवार

बनवारी लाल जाट एवं अक्षय चितौडा
कृषि विज्ञान केन्द्र, दौसा (राजस्थान)

गाजर घास का वैज्ञानिक नाम "पारथेनियम हिस्टेरोफोरस" है। गाजर घास को कई स्थानीय नामों जैसे कांग्रेस घास, चटक चाँदनी, कडवी घास आदि से भी जाना जाता है। पहले यह खरपतवार केवल अकृषित क्षेत्रों में ही दिखाई देता था किन्तु अब यह हर प्रकार की फसलों, उद्यानों, वनों, रोड व रेल्वे ट्रेक के किनारों यत्र तत्र सर्वत्र पाया जाने लगा है। गाजर घास का उद्गम स्थान मेक्सिको, अमेरिका, त्रिनिडाड तथा अर्जेन्टिना माना जाता है। भारत में गाजर घास को सर्वप्रथम 1956 में पूणे (महाराष्ट्र) में देखा गया। तब से यह अनिष्टकारी खरपतवार निरन्तर वृद्वि एवं क्षेत्र विस्तार करते हुए लगभग भारतवर्ष के अधिकतर भागों में पाया जाने लगा है।

पारथेनियम खरपतवार की पत्तियाँ गाजर जैसी लगती हैं अतः ग्रामीण क्षेत्रों में इसे गाजर घास भी कहते हैं। यह 0.5 से 1.0 मीटर ऊँचाई का पौधा होता है जिसमें कई शाखायें होती हैं। इसकी पत्तियों तथा तने पर छोटे–छोटे बालनुमा संरचनाएँ पायी जाती हैं तथा सम्पूर्ण पौधा सफेद रंग के फूलों से आच्छादित रहता है। इस खरपतवार का विस्तार बीज द्वारा होता है। इस खरपतवार का अकेला पौधा 5000 से 25000 बीज बनाने की क्षमता रखता है। इस खरपतवार का बीज इतना हल्का होता है कि हवा, पानी तथा अन्य मानवीय कृषि कियाओं द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान पर प्रकीर्णित हो जाता है। इस खरपतवार के तीव्र गति से विस्तार के पीछे दो कारण हैं, पहला इसके प्राकृतिक शत्रु कम हैं तथा दूसरा इसकी पुनर्वृत्ती की क्षमता अत्यधिक होती है। इस कारण से यह खरपतवार भारत में तकरीबन 3.5 करोड हैक्टर क्षेत्रफल में फैल चुका है।

गाजर घास के हानिकारक प्रभाव : यह खरपतवार इतना प्रभावी है कि इस घास के कारण बोई गई फसल के साथ ही स्थानीय वनस्पतियाँ उग नहीं पाती हैं और तो और यह खरपतवार पर्यावरण एवं जैव विविधता पर भी प्रतिकूल प्रभाव डालती है। इसमें 'सेस्क्यूटरपीन लेक्टोन' नामक विषाक्त पदार्थ पाया जाता है जो फसलों के अंकुरण एवं वृद्धि पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है। इसको खाने से पशुओं में अनेक प्रकार के रोग पैदा हो सकते है और दुधारू पशुओं में दूध में कड़वाहट के साथ–साथ दूध उत्पादन में कमी आने लगती है। साथ ही यह मनुष्य में त्वचा रोग, बुखार और दमा जैसी बीमारियाँ उत्पन्न करता है। आजकल एलर्जी का रोग दिनोंदिन बढता जा रहा है, डाक्टरों के अनुसार इस खरपतवार के सम्पर्क में आने से एलर्जी, एक्जीमा, खुजली जैसी बीमारियां हो सकती हैं। यह खरपतवार किसी भी प्रकार की भूमि में उग सकता है और किसी भी प्रकार के मौसम में उग जाता है। इस खरपतवार से गावों के पगडंडीनुमा रास्ते, पार्को के रास्ते लगभग बंद से हो जाते हैं।

गाजर घास का नियंत्रण : नम भूमि में गाजर घास को फूल आने से पहले हाथ से उखाड़कर जला देने या इसका कम्पोस्ट बनाकर इसका काफी हद तक नियंत्रण किया जा सकता है। इसे उखाड़ते समय हाथों में दस्ताने एवं सुरक्षात्मक कपड़ो का प्रयोग करना चाहिए।

वैसे तो यह खरपतवार वर्ष पर्यन्त पुष्पन फलन करता है, परन्तु अधिकांशतः इस खरपतवार में मध्य अगस्त से मध्य सितम्बर के आस पास पुष्पन पूरे जोरों पर होता है। यही समय (मध्य अगस्त) इस खरपतवार को उखाडकर समूल नष्ट करने का सर्वोत्तम समय है। ताकि यह खरपतवार वंशवृद्धि हेतु बीज ही न बना सके। अतः कृषि एवं अन्य शिक्षण संस्थानों में राष्ट्रीय खरपतवार अनुसंधान निदेशालय, जबलपुर द्वारा 16 से 22 अगस्त तक गाजर घास उन्मुलन सप्ताह का आयोजन भी किया जाता है ताकि बीज बनने से पहले इस खरपतवार को समूल नष्ट किया जा सके। अतः सभी शिक्षण संस्थान, अनुसंधान संस्थान व विस्तार संस्थानों के साथ–साथ गैर सरकारी संगठनों को भी गाजर घास उन्मुलन सप्ताह में सक्रिय सहयोग देकर इस अनिष्टकारी खरपतवार को नष्ट कर इसके विस्तार को रोकने में सहयोग करना चाहिए।

जिन स्थानों पर यह खरपतवार बहुतायत से पाया जाता है, वहाँ पर अगर वैज्ञानिक विधि से गाजर घास से कम्पोस्ट बनाई जावे तो यह एक सुरक्षित कम्पोस्ट होगी। गाजर घास के सर्दी–गर्मी के प्रति असंवेदनशील बीजों में सुषुप्तावस्था न होने के कारण एक समय में फूलयुक्त और फूलविहीन गाजर घास दिखाई देती है। अतः किसान भाइयों को यह सलाह दी जाती है कि गाजर घास के पौधों में फूल आने से पहले ही छोटी अवस्था में उखाडकर कम्पोस्ट या वर्मी–कम्पोस्ट खाद बनायें। गाजर घास कम्पोस्ट एक ऐसी जैविक खाद है, जिसके प्रयोग से फसलों, मनुष्यों और पशुओं पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पडता है।

पारथेनियम या गाजर घास के तीव्र विस्तार को रोकने एवं इसे खाकर नष्ट करने के लिए मेक्सिकन बीटल "जाइगोग्रामा बाइकलरेटा" नामक कीट बहुत उपयोगी है। यह बीटल भारतीय खरपतवार अनुसंधान निदेशालय, जबलपुर से कृषि विज्ञान केन्द्र/गैर सरकारी संगठन/किसान संगठनों द्वारा गाजर घास को नष्ट करने के लिए मंगवाई जा सकती है। इस बीटल को जहाँ बहुत लबें चौडे क्षेत्रफल में गाजर घास का विस्तार हो और हाथ से उखाडना संभव ना हो वहाँ प्रयोग कर गाजर घास को नियन्त्रित किया जा सकता है।

शाकनाशियों के प्रयोग द्वारा भी इसका नियंत्रण किया जा सकता है। आकर्षित क्षेत्रों में गाजर घास के साथ सभी प्रकार की वनस्पतियों को नष्ट करने के लिए ग्लाइफोसेट (1–1.5 प्रतिशत) और घास कुल की वनस्पतियों को बचाते हुए केवल गाजर घास को नष्ट करने के लिए मेट्रीबूजिन (0.3–0.5 प्रतिशत) या 2,4–डी (1–1.5 प्रतिशत) का स्प्रे किया जा सकता है।

प्रतिस्पर्धी वनस्पतियों जैसे चकोड़ा (केसिआ टोरा), हिप्टिस, जंगली चौलाई, गेंदा आदि के द्वारा गाजर घास को विस्थापित किया जा सकता है। अक्टूबर–नवम्बर में चकोड़ा के बीज एकत्रित कर फरवरी–अप्रेल में गाजर घास ग्रसित स्थानों पर छिड़काव कर देना चाहिए। इसके लिए काफी मात्रा में बीज की आवश्यकता होगी। वर्षा होने पर वहाँ चकोड़ा उगकर धीरे धीरे गाजर घास को विस्थापित कर देता है।

गाजर घास के नियन्त्रण हेतु विद्यालय, कॉलेज, कृषक समुह, कृषि विज्ञान केन्द्र, कृषि विश्वविद्यालय आदि के समन्वित प्रयासों से गाजर घास जागरूकता एवं उन्मुलन अभियान का आयोजन कर सफलता पायी जा सकती है। अतः इस अनिष्टकारी खरपतवार के बारे में समाचार पत्रों, पत्र–पत्रिकाओं द्वारा अधिक से अधिक जागरुकता पैदा की जावे ताकि खेती, पशुपालन एवं मनुष्य स्वास्थ्य के साथ–साथ ही पर्यावरण तथा जैव विविधता के लिए खतरा बनते इस गाजर घास का समय पर नियन्त्रण किया जा सके। इसी मूल उद्देश्य को ध्यान में रखकर भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के निर्देशन पर इस वर्ष 18 वे पारथेनियम जागरूकता सप्ताह का आयोजन किया जाएगा। इस प्रकार इसके उचित प्रबंधन के लिए युद्ध स्तर पर प्रयास आवश्यक है।

❋❋❋

कैसे तैयार करे नीम खाद एवं इसका खेती में महत्व

अनुज कुमार, देवी लाल किकरालियाँ एवं नरेन्द्र पादड़ा
कृषि विश्वविद्यालय, कोटा एवं स्वामी केशवानंद राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय, बीकानेर

नीम को 21 वी सदी का पेड़ कहा जाता है। नीम का वातावरण के साथ–साथ खेती में बहुत योगदान है जैविक कृषि के क्षेत्र में नीम का उपयोग बहुत महत्वपूर्ण है। नीम में हानि रहित और जैविक रूप से अपघटित होने वाले तत्व मौजूद हैं, इसलिए मृदा पर लाभदायक असर आता है । वैज्ञानिक अनुसंधानों से यह ज्ञात हुआ है, कि नीम का सत 400 जातियों के हानिकारक कीटों के लिए प्रभावी है। रसायनों के उपयोग से फसल को नुकसान पहुँचाने वाले कीटों में कृत्रिम रसायनों के प्रति प्रतिरोधक क्षमता पैदा हो जाती है इस दिशा में नीम को बहुत प्रभावी जैविक रसायन पाया गया है। नीम का सत नीम के बीज, पत्तियों और नीम की खली तीनों से बनाया जाता है।

देश में हरित क्रांति के बाद से खेतों में रासायनिक खाद और कीटनाशकों का प्रयोग बढ़ा है. इससे खेती–किसानी में सकारात्मक और नकारात्मक यानी दोनों तरह के प्रभाव देखने को मिले हैं। कुल जमा रासायनिक खादों व कीटनाशकों के अधिक प्रयोग से देश में खाद्यान्न का उत्पादन अधिक तो हुआ है, लेकिन इसके साथ ही कई घातक बीमारियां भी तेजी से बढ़ी है। इस बीच स्वस्थ्य आहार से बेहतर स्वास्थ्य के विचार को मानते हुए देशभर में जैविक खेती ने अपनी जगह बनाई हैं. जिसमें बिना रासायनिक खाद और कीटनाशकों के प्रयोग से खेती की जाती है, लेकिन जैविक खेती में भी फसलों को कीटों से बचाना बेहद ही चुनौतीपूर्ण होता है। ऐसे में जैविक खेती में नीम का प्रयोग कीटनाशक के तौर पर होता है।

नीम के पेड़ प्रायः सड़कों के किनारे, गांव और खेतों में प्राकृतिक रूप में पाये जाते है। सघन बढ़वार वाला यह पौधा भूमि से 30–40 फीट तक ऊँचा हो जाता है। इसकी औसत उम्र 70–135 वर्ष तक आंकी गई है। मार्च–अप्रैल माह में सफेद रंग के छोटे फूल आते हैं, जो जून से अगस्त माह तक पक कर गिरते रहते हैं. इसे निम्बोली फल कहते हैं। निम्बोली का गूदा स्वाद में हल्का मीठा होता है। पके फल में औसत तौर पर 23.8 प्रतिशत छिलका, 47.5 प्रतिशत गूदा, 18.6 प्रतिशत कवच व 10.1 प्रतिशत गिरी निकलती है। सामान्यतः एक क्विंटल निम्बोली से 18–20 किलोग्राम तक गिरी मिल जाती है, जिसमे 35.3 प्रतिशत तक तेल निकलता है, जो अत्यधिक महत्वपूर्ण होता है।

निम्बोली के उपयोगी रसायन

अजाडीरेक्टिन

आज कल पूरे विश्व में नीम प्रचलित हैं। भारतीय नीम के एक किलो गिरी में लगभग 5 ग्राम अजाडीरेक्टिन मिलता हैं। आज बाजार में उपलब्ध नीम आधारित कीट नियंत्रण दवाओं का स्तर इसमें उपलब्ध अजाडीरेक्टिन मात्रा से माना जाता हैं। यह कीटों की आहार प्रक्रिया में बाधक हैं तथा उनका जीवन चक्र बर्बाद कर देता हैं।

मेलेन्ट्रियाल एवं सेलेनिनि : यह कीटों को पत्ती खाने से रोक देता हैं।
निम्बिडीन और निम्बिन : निम्बोली के गूदे में 2% निम्बिन होता हैं। इसमें जीवाणु रोधक गुण होते हैं।

नीम खाद क्या है? : नीम को वैद्य का दर्जा का दर्जा प्राप्त है, मुनष्यों के लिए औषधि बनाने में नीम की उपयोगिता सर्वमान्य है। ठीक ऐसे ही इसकी खाद भी फसल संरक्षण के लिए बेहद कारगर है।

नीम के छाल, टहनियां, पत्तियों और निम्बोली (नीम पर लगने वाला फल) से नीम की खाद बनाई जाती है। इसका उपयोग सबसे ज्यादा जैविक खेती कीटनाशक के रूप में प्रयोग किया जाता है। नीम की खाद फसलों की वैसे ही रक्षा करते हैं जैसे महंगे रासायनिक दवाएं।

नीम खाद के फायदे

- कृषि लागत में कमी, किसान आय में वृद्धि होती है।
- यह बायो–डिग्रेडेबल (प्रकृति को बिना नुकसान पहुंचाए होने वाली क्रिया) है और इसे कई अन्य विभिन्न प्रकार के उर्वरकों के साथ इस्तेमाल किया जा सकता है।
- यह भूमि का उपजाऊपन बरकरार रखने में सहायक है।
- भारी धातुओं से मुक्त होने के कारण यह फसलों और मिट्टी के लिए बिल्कुल सुरक्षित है।
- फसलों को संतुलित पोषण, विकास और विषरहित ।
- यह खाद कार्बनिक तत्वों में वृद्धि को बढ़ाती है।
- 1 किलो निम्बोली पाउडर प्रति क्विंटल चना और दालों में मिलाकर रखें तो 6 से 12 महीनों तक संग्रहित अनाज की सुरक्षा की जा सकती है।

ऐसे बनाएं नीम की खाद

पाउडर बनाकर

- इसका घोल बनाने के लिए 1 किग्रा नीम की पत्तियों, निम्बोली छाल को बारीक पीस लीजिए। यह ठीक किसी चटनी की तरह पिसा होना चाहिए। जिसके बाद इसे कपडे में बांध कर रातभर रख लीजिए। दूसरे दिन निचोड़ कर इसके गुद्दे को खाद के रूप में प्रयोग लें। गुद्दे से निकले रस को 10 लीटर पानी में मिला लीजिए। इसे समयानुसार फसलों पर छिड़काव करते रहें।
- इसके अलावा निम्बोली को पीस कर उसमें 5 लीटर वेस्ट डिकम्पोजर सोल्यूशन मिला लें। ढक्कन लगा कर लगभग 25 दिनों के लिए छोड़ दें। तैयार होने के बाद इसमें पानी मिलाकर कई सालों तक प्रयोग में लिया जा सकता है। ध्यान रहे इसे छांव में ही तैयार करना है और छायादार स्थान पर ही रखना है।

- खाद जमीन को कड़वा कर उसमें पनपने वाले जीवों को नष्ट कर देती है। यह पर्यावरण के लिहाज से तो सुरक्षित है ही साथ ही फसलों में होने वाली बीमारियों से भी बचा जा सकता है।
- 5 किग्रा नीम के सूखे बीजों को साफ कर उसके छिलके हो हटाकर नीम की गिरी निकाल लें। इसको पीस कर पाउडर बना लें, इस पाउडर को दस लीटर पानी में डालकर रात भर रखें ।इस घोल को सुबह किसी लकड़ी के डंडे से हिलाकर मिलायें तथा महीन कपड़े से छान लें। इस घोल में 100 ग्राम कपड़ा धोने वाला पाउडर मिलाकर फिर 150 से 200 लीटर पानी में मिलाएं ।यह एक उपयुक्त कीटनाशी है ।।
- ढाई किग्रा. नीम का बुरादा ढाई से तीन किग्रा. लहसुन तथा 250 से 300 ग्राम खाने वाला तम्बाकू इन तीनों का पेस्ट बना लें इस पेस्ट में दो लीटर गोमूत्र या मिट्टी का तेल मिलाकर धान या गेहूँ की फसल पर छिड़काव करें ।

नीम खाद का उपयोग

150 किलोग्राम प्रति हैक्टेयर नीम खाद का प्रयोग एक एकड़ में कर सकते हैं। खेत में नीम खाद डालने के बाद भूमि की अच्छी प्रकार से जुताई करें, ताकि खाद पूर्ण रूप से भूमि में मिल जाए। किसान नीम के तेल की 30 मि.ली. उस मात्रा को 150 लीटर पानी में घोल तैयार कर प्रति एकड़ में छिड़काव कर सकते हैं। इससे फसलों को हानि पहुंचाने वाले कीड़े मर जाएंगे। इसका तेल 1–2 लीटर की मात्रा प्रति एकड़ छिड़काव करने से काटने, चबाने एवं रस चूसने वाले कीड़े नष्ट हो जाते हैं, कीटों के अंडों से बच्चे भी नहीं निकल पाते।

नीम खाद का उपयोग करते समय इन बातों का रखें ध्यान

- नीम खाद का छिड़काव प्रातःकाल या शाम करने से अच्छे परिणाम मिलते हैं।
- सर्दियों में 10 दिन बाद तथा वर्षा ;तु में दो तीन दिनों में छिड़काव करें।
- छिड़काव इस प्रकार करें कि पत्तियों के निचले सिरों पर भी पहुंचे।
- अधिक गाढ़े घोल की अपेक्षा हल्के घोल का कम दिनों के अन्तराल पर छिड़काव करें।

नीम के उपयोग से दीमक, कटुआ, सफेद गिडार, आम की गुजिया, टिड्डे, सफेद लट एवं मकड़ी समेत कीटों की 400 प्रजातियों से फसलों की रक्षा की जा सकती है।

✺✺✺

अलसी : एक स्वास्थ्यवर्धक खजाना

पूजा शर्मा
श्री कर्ण नरेंद्र कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर

प्रकृति ने हमें अनगिनत स्वास्थ्यवर्धक उपहार दिए है, और अलसी बीज इन उपहारों में से एक है। अलसी छोटे किस्म बीज का होता है, जिसका वैज्ञानिक नाम लिनम यूसिटाटिसिमम एल. होता है। यह बीज न सिर्फ खाने में स्वादिष्ट होता है, बल्कि इसके स्वास्थ्यवर्धक गुणों की वजह से यह आयुर्वेदिक और प्राकृतिक चिकित्सा में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। अलसी बीज कि मुख्य गुणवत्ता यह है कि यह विभिन्न पोषक तत्वों का अच्छा स्रोत होता है। यह बीज बहुत अच्छी मात्रा में आवश्यक वसा, प्रोटीन, रेशे, आवश्यक विटामिन और खनिज प्रदान करता है। अलसी बीज में मौजूद ओमेगा–3 फैटी एसिड्स हृदय स्वास्थ्य के लिए बेहद महत्वपूर्ण होते हैं। यह फैटी एसिड्स हृदय की धड़कन को संतुलित रखने में मदद करते हैं और रक्तचाप को नियंत्रित करने में सहायक सिद्ध होते हैं। अलसी बीज में मौजूद रेशे भोजन की अच्छी पाचन, प्रक्रिया में मदद करता है और कब्ज की समस्या से बचाता है। अलसी बीज का उपयोग सावधानीपूर्वक करना चाहिए, खासतौर पर स्तनपान काल या किसी चिकित्सा समस्या में पूरी जानकारी प्राप्त करने के बाद ही करना चाइये। समापन अलसी बीज का सेवन स्वास्थ्य के लिए बेहद फायदेमंद हो सकता है। इसके नियमित सेवन से हृदय को विभिन्न बीमारीयो से सुरक्षित रख सकते हैं, पाचन स्वास्थ्य को सुधार सकते हैं, और अन्य बहुत सारे स्वास्थ्य समस्याओं से बच सकते हैं।

अलसी के बीज

अलसी की फसल

पोषक तत्वों से भरपूर है अलसी

1. **फाइबर:** अलसी में फाइबर की अच्छी मात्रा होती है, जो पाचन प्रक्रिया को सुधारने में मदद करता है।
2. **प्रोटीन:** अलसी में प्रोटीन की अच्छी मात्रा पाई जाती है जो लगभग 10 प्रतिशत तक होती है, जिससे मांसपेशियों और ऊतकों की निर्माण प्रक्रिया में सहायता प्रदान होती है।
3. **विटामिन और खनिज तत्व :** अलसी में विटामिन ई, विटामिन बी1, विटामिन बी6, फोलिक एसिड, कैल्शियम, मैग्नीशियम, पोटैशियम और आयरन जैसे विटामिन और खनिज तत्व पाए जाते हैं।
4. **ओमेगा–3 फैटी अम्ल :** अलसी ओमेगा–3 फैटी अम्ल का अच्छा स्रोत माना जाता है।

स्वास्थ्यवर्धक है अलसी का बीज

1. **प्रचूर मात्रा में ओमेगा–3 फैटी एसिड्स:** अलसी में ओमेगा–3 फैटी एसिड्स की भरपूर मात्रा होती है, जो हृदय संबंधित बीमारीया को सुधारने में मदद करते हैं। यह एसिड्स रक्तचाप को नियंत्रित करने में भी मदद प्रदान करते हैं।
2. **लाभदायक तत्वों से भरपूर:** अलसी में रेशे, प्रोटीन, विटामिन, खनिज तत्व और एंटीऑक्सीडेंट्स होते हैं जो शरीर के निर्माण और सुरक्षा प्रक्रियाओं में सहायक होते हैं।
3. **डायबिटीज के नियंत्रण में मदद:** अलसी का सेवन करने से रक्त में शुगर का स्तर नियंत्रित रह सकता है, जिससे मधुमेह के रोगियों के लिए यह फायदेमंद हो सकता है।
4. **हृदय स्वास्थ्य को बेहतर बनाने में मदद:** इसमें मौजूद फाइबर और ओमेगा–3 फैटी एसिड्स के कारण अलसी का सेवन करने से हृदय स्वास्थ्य में सुधार हो सकता है।
5. **वजन नियंत्रण में सहायक:** अलसी का सेवन करने से भूख कम लगती है और आपको वजन नियंत्रण में मदद मिलती है।
6. **हार्मोनल स्वास्थ्य को सुधारने में मदद:** अलसी में मौजूद फाइटोएस्ट्रोजेन्स के कारण यह महिलाओं के हार्मोनल स्वास्थ्य को सुधारने में मदद करता हैं।
7. **डेटॉक्सिफिकेशन:** अलसी में मौजूद फाइबर की मदद से शरीर की डेटॉक्सिफिकेशन प्रक्रिया में सहायक हो सकते हैं।

दैनिक जीवन में अलसी की अनुशंसित मात्रा : आमतौर पर, दैनिक आहार में 1 से 2 चम्मच (15–30 ग्राम) भिगोकर खाने की सिफारिश की जाती है। आप इसे अन्य आहार के साथ या सलाद दही, या अन्य खाद्य पदार्थो में मिलाकर भी सेवन कर सकते हैं। हालांकि, सबसे अच्छा है कि आप अपने चिकित्सक से परामर्श करें और उनकी सिफारिशों का पालन करें, खासकर अगर आपकी कोई विशेष स्वास्थ्य स्थिति है।

भविष्य मैं अवसर और परिणाम : वर्तमान समय में पौष्टिक और स्वास्थ्यवर्धक खाद्य पदार्थो की मांग बढ़ती जा रही है। संपूर्ण क्रियाशील आहार के रूप में सीधे या विभिन्न मूल्य वर्धित उत्पादों में अलसी के उपयोग की अपार संभावनाएं हैं। अलसी के बीज न केवल कार्बोहाइड्रेट और तेल का स्रोत हैं, बल्कि पूरे बीज में –3 फैटी एसिड, खाद्य रेशे, लिग्निन और फाइटोकेमिकल्स जैसे कई सुरक्षात्मक कारकों की उपस्थिति के कारण किसी के आहार में एक महत्वपूर्ण कारक हैं। पोषक तत्वों का बेहतर स्रोत और प्रदर्शित स्वास्थ्य लाभ होने के बावजूद, कई लोगों द्वारा अलसी का सेवन नहीं किया जा रहा है। हाल ही में अलसी के बीजों का उपयोग फिर से बढ़ गया है। लोगों को अलसी का सेवन करने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए क्योंकि यह पौष्टिक होने के साथ–साथ कई स्वास्थ्य लाभ भी प्रदान करता है। अगर अधिक मात्रा में अलसी का सेवन किया जाए तो इसके कई दुष्प्रभाव हो सकते हैं। आहार में अलसी को शामिल करने के कई विकल्प मौजूद हैं जैसे पिसा हुआ अलसी अनाज, दही या इसे सलाद पर छिड़कना, साथ ही इसके साथ पकाना। इसलिए, अलसी के बीज एक आशाजनक न्यूट्रास्युटिकल और औषधीय लाभों का भंडार हैं।

मटर के प्रमुख रोग एवं उनका प्रबंधन

हनुमान सिंह एवं राजेश कुमार महावर
कृषि महाविद्यालय, हिण्डोली–बून्दी, कृषि विश्वविद्यालय, कोटा

मटर, चना और मसूर के बाद भारत की तीसरी सबसे लोकप्रिय रबी दलहन हैं। भारत में मटर की खेती उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, झारखंड, राजस्थान एवं असम राज्यों में प्रमुखतः से की जाती हैं। राजस्थान में मटर का उत्पादन जयपुर, नागौर, बूंदी, अजमेर, अलवर, सीकर और हनुमानगढ़ आदि जिलों मे किया जाता हैं। इस फसल कों कई प्रकार के रोग नुकसान पहुंचाते हैं यदि इनका नियंत्रण समय पर न किया जाए, तो मटर की फसल घाटे का सौदा साबित होती है। प्रस्तुत लेख में मटर के मुख्य रोगों और उनकी रोकथाम के उपायों की जानकारी दी जा रही है।

उखटा (विल्ट) रोग

इस रोग के कारण प्रभावित पौधों की नीचे वाली पत्तियां पीली पड़ जाती है। ऐसे पौधों के तने या जड़ को यदि लंबाई में चाकू से काट कर देखें, तो वे बदरंग दिखाई देती हैं। रोगग्रस्त पौधों में फलियां कम बनती है।

रोकथाम

- बिजाई से पहले बोए जाने वाले बीजों को बाविस्टिन 2 ग्राम प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से बीज उपचार करना चाहिए।
- फसल में अधिक सिंचाई न करें, क्योंकि मृदा में ज्यादा नमी से रोग की उग्रता बढ़ती है।
- फसल की अगेती बिजाई नहीं करें।
- रोगरोधी किस्मों का चयन करें।
- बेनलेट, टोपसिन एम. बाविस्टिन व फाइटोलान (0.1 प्रतिशत) में से किसी भी फफूंदनाशी के घोल से छिड़काव व मृदा का उपचार करें। यह किया 10–15 दिनों के अंतराल पर दोहराएं।

चूर्णलासिता/पाउडरी मिल्ड्यू रोग

मटर का यह सबसे भयंकर रोग है। इसके बीजाणु मृदा में व जंगली पौधों की पत्तियों पर पनपते है। बाद में उपयुक्त वातावरण मिलते ही रोग की उत्पत्ति का कारण बनते है। इस रोग के लक्षण पौधों के भी भागों पर देखे जा सकते हैं ये लक्षण छोटे सफेद चूर्णी धब्बों के रुप में होते है, जो संख्या एंव आकार में बड़े होने पर एक–दुसरे से मिल जाते है। रोगग्रस्त पौधों की टहनियों पर जो फलियां आती है, वे प्रायः बहुत छोटी व सिकुडी हुई होती है। फलियां पकने से पहले ही सूखकर नीचे गिर जाती है।

रोकथाम

- फसल पर रोग के लक्षण दिखाई देते ही कैराथैन (5 मि.ली.) या वैटेबल सल्फर (20 ग्राम) या बाविस्टिन (5 ग्राम) का 10 लीटर में घोल बनाकर छिड़काव करें। यदि आवश्यक हो तो 10–15 दिनों के बाद पुनः छिड़काव दोहराएं।
- खड़ी फसल में टेबूकानोजोल (0.04 प्रतिशत) या हैक्साकोनाजोल 5 ई सी का 15–20 दिन के अन्तराल पर छिड़काव करें।
- फसल की कटाई के बाद रोगग्रस्त पौधों व पत्तियों को इकट्ठा करके नश्ट कर दें।

डाउनी मिल्ड्यू रोग

इस रोग से ग्रस्त पत्तों की ऊपरी सतह पर पीले से भूरे रंग के धब्बे बन जाते है। नमी वाले मौसम में पत्तों की निचली सतह पर इन धब्बों पर बैंगनी रंग की वृद्धि देखी जा सकती है। फलियों पर भी पीले से भूरे रंग के अंडाकार धब्बे बन जाते हैं फलियों में पनप रहे बीज पर भी छोटे और भूरे रंग के धब्बे बन जाते है।

रोकथाम

- फसल के रोगग्रस्त अवशेषों को इकठ्ठा करके नष्ट कर दें।
- खेत में जल निकासी का उचित प्रबंध करें।
- रोगमुक्त बीज का चयन करें।

एस्कोकाइटा ब्लाइट

इस रोग से प्रभावित पौधे मुरझा जाते हैं और जड़ें भूरी हो जाती है। पत्तों तथा तनों पर भूरे धब्बे बन जाते है। इससे फसल कमजोर हो जाती है।

रोकथाम

- मोटे एंव स्वस्थ बीजों का प्रयोग करना चाहिए।
- रोगग्रसित पौधों को नष्ट कर देवें।
- बीज को बाविस्टीन (2.5 ग्रा./कि.ग्रा.) से उपचार करें।
- हल्की सिंचाई दें व जल निकासी का उचित प्रबंध करें।
- खड़ी फसल में रोग दिखाई दिखाई देने पर पौधे पर नीम के अर्क का छिड़काव दो से तीन बार करना चाहिए।

रतुआ रोग

इस रोग में पत्तियों की निचली सतह पर पीले और नारंगी रंग के उभरे हुए धब्बे दिखाई देते है। बाद में इन्हीं धब्बों का रंग गहरा भूरा या काला हो जाता है। रोग का प्रकोप 17 से 22 डिग्री सेल्सियस तापमान और अधिक नमी तथा ओस व बार–बार हल्की होने से अधिक बढ़ता है।

रोकथाम

- रोगरोधी किस्में ही उगाएं।
- रोगग्रस्त अवशेषों को नष्ट कर दें।
- जिन क्षेत्रों में इस रोग का अधिक प्रकोप होता है। उनमें फसल का जल्द रोपण करें।
- लंबा फसलचक्र अपनाएं और रोग परपोशी फसलें न लगाएं।
- फसल पर इंडोफिल एम–45 नामक दवा का 400 ग्राम प्रति एकड़ या कैलेक्सिन 200 मि.ली. प्रति एकड़ की दर से 200 लीटर पानी में मिलाकर 10 दिनों के अंतर पर 2–3 बार छिड़काव करें।

मटर का विषाणु रोग

रोगग्रस्त पौधे पीले पड़ जाते हैं तथा उनकी बढ़वार रुक जाती है। पत्तियां खुरदरी, मुड़ी–तुड़ी, झरीदार, चितकबरी व गुच्छानुमा हो जाती है।

रोकथाम

- रोगग्रस्त पौधों को शुरु में ही उखाड़कर फेंक दे, ताकि रोग दूसरे स्वस्थ पौधों में न फैल सके।
- यह रोग माहूं (एफिड) नामक कीट से फैलता है। इसकी रोकथाम के लिए 125 मि.ली. फॉस्फेमिडान या मैटासिस्टॉक्स या रोगोर 400 मि.ली. कीटनाशक का बदल–बदल कर छिड़काव करें।

जीवाणु झुलसा रोग

इस रोग में पौधे के सभी ऊपरी हिस्सों पर जलसिक्त धब्बे बनते है। ये धब्बे पीले तथा बाद में भूरे और पपड़ी में बदल जाते है।

रोकथाम

- स्वस्थ व रोगरहित बीजों की बिजाई करनी चाहिए।
- रोगग्रस्त क्षेत्रों में 2–3 वर्ष मटर की खेती न करें।
- फसल में ज्यादा सिंचाई न करें तथा जल की निकासी समुति प्रबंध करें।
- खरपतवार समय–समय पर निकालते रहें।
- रोगग्रस्त पौधों का शुरु में ही उखाड़ कर फेंक दें।

❋❋❋

जैव संवर्धित किस्में : कुपोषण से निजात पाने का टिकाऊ तरीका

खजान सिंह, भूरी सिंह, वर्षा गुप्ता एवं मन्जू मीणा
कृषि विश्वविद्यालय, कोटा

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारतीय कृषि में प्रभावशाली प्रगति होने से खाद्यान्न उत्पादन में अभूतपूर्व वृद्धि हुई है। जहाँ साठ के दशक में घरेलु आवश्यकता को पूरा करने के लिए देश को खाद्यान्न आयात करना पड़ता था, वहीं आज हम देश की 142 करोड़ जनसंख्या के लिए भोजन आपूर्ति के साथ दुनिया के अन्य देशों को भी निर्यात कर रहे हैं। अधिक उत्पादन की दौड़ में फसलों की गुणवत्ता सुधार पर ध्यान नहीं दिया गया, परिणामतः कुपोषण की समस्या बढ़ने लगी। कुपोषण की समस्या अविकसित एवं विकासशील देशों में अधिक हुई है। भारत में 25 प्रतिशत से अधिक लोग गरीबी रेखा से नीचे हैं तथा 15 प्रतिशत से अधिक जनसंख्या विशेषकर महिलाएं एवं बच्चे कुपोषित हैं, जिससे वे अनेक स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याओं के लिए संवेदनशील हैं। पोषण अनुपूरक विभिन्न साधनों जैसे व्यावसायिक संवर्धन, चिकित्सा पूरक, आहार विविधता एवं जैव संवर्धन द्वारा किया जाता है। फसलों की जैव संवर्धित किस्में इसका एक सस्ता व टिकाऊ समाधान हो सकता है। विगत कुछ वर्षो में देश ने अनाज, दाल, तिलहन, सब्जी एवं फलों में कई जैव संवर्धित किस्मों के विकास में आशातीत प्रगति की है, जो लोंगो की छिपी हुई कुपोषण को दूर करने में सहायक होगी। विगत वर्षो में विकसित जैव संवर्धित किस्में निम्न प्रकार हैं :–

धान : सी आर धान 310 : राष्ट्रीय चावल अनुसन्धान संस्थान कटक द्वारा विकसित धान की इस किस्म में प्रचलित किस्मों (7.8 % प्रोटीन) की तुलना में **अधिक प्रोटीन (10.3 %)** पाई जाती है। यह किस्म 125 दिन में पककर 45 क्विंटल प्रति हेक्टेयर उपज देती है। यह किस्म उड़ीसा, मध्य प्रदेश तथा उत्तर प्रदेश के लिए उपयुक्त है।

धानः डी आर आर धान 45 : भारतीय चावल अनुसन्धान संस्थान हैदराबाद द्वारा विकसित धान की इस किस्म के दानों में प्रचलित किस्मों में उपस्थित जिंक (12–16 पी पी एम) की तुलना में **अधिक जिंक (22.6 पी पी एम)** पाया जाता है। यह किस्म 125–130 दिन में पककर 50 क्विंटल प्रति हेक्टेयर उपज देती है। यह किस्म कर्नाटक, आंध्र प्रदेश, तमिलनाडु व तेलंगाना के लिए उपयुक्त है।

गेंहू : डब्ल्यू बी 02 : भारतीय गेंहू एवं जौ अनुसन्धान संस्थान, करनाल द्वारा विकसित धान की इस किस्म के दानों में **जिंक (42.0 पी पी एम) तथा आयरन (40.0 पी पी एम)** की मात्रा प्रचलित किस्मों में उपस्थित जिंक (32.0 पी पी एम) एवं आयरन (28–32 पी पी एम्) की तुलना में अधिक पाई जाती है। यह किस्म पंजाब, हरियाणा, दिल्ली, कोटा खंड को छोड़कर राजस्थान, पश्चिमी उत्तर प्रदेश, उत्तराखंड का तराई क्षेत्र, हिमाचल व जम्मू के भाग के लिए उपयुक्त है। यह किस्म 142 दिन में पककर 51 क्विंटल प्रति हेक्टेयर उपज देती है।

गेंहू : एच पी बी डब्ल्यू 01: पंजाब कृषि विश्वविद्यालय, लुधियाना द्वारा वर्ष 2017 में विकसित इस किस्म के दानों में **जिंक (40.6 पी पी एम) तथा आयरन (40.0 पी पी एम)** पाया जाता है, जो गेंहू की प्रचलित किस्मों में उपस्थित जिंक (32.0 पी पी एम) एवं आयरन (28.0–32.0 पी पी एम) की तुलना में अधिक पाई जाती है। यह किस्म पंजाब, हरियाणा, दिल्ली, कोटा खंड को छोड़कर राजस्थान, पश्चिमी उत्तर प्रदेश, उत्तराखंड का तराई क्षेत्र, हिमाचल प्रदेश के ऊना तथा जम्मू कश्मीर के जम्मू व कठुआ जिलों के सिंचित क्षेत्रों के लिए उपयुक्त है। यह किस्म 141 दिन में पककर 52 क्विंटल प्रति हेक्टेयर उपज देती है।

मक्का : पूसा विवेक क्यू पी एम् 9 संशोधित : भारतीय कृषि अनुसन्धान संस्थान, नई दिल्ली द्वारा वर्ष 2017 में विकसित देश की प्रथम प्रोविटामिन ए संपन्न संकर मक्का में **प्रोविटामिन ए (8.15 पी पी एम), लाइसिन (2.67 %) एवं ट्रिप्टोफेन (0.74%)** पाया जाता है, जो मक्का की प्रचलित संकर किस्मों में उपस्थित प्रोविटामिन ए (1.0–2.0 पी पी एम), लाइसिन (1.5 - 2.0 %) एवं ट्रिप्टोफेन (-3 -0-4 %) से अधिक पाई जाती है। इस किस्म से देश के उत्तरी पहाड़ी क्षेत्रों यथा जम्मू कश्मीर, उत्तराखंड, हिमाचल प्रदेश तथा उत्तरी पूर्वी राज्यों में 93 में पककर 57 क्विंटल प्रति हेक्टेयर उपज प्राप्त होती है। जबकि दक्षिणी प्रायद्वीपीय राज्यों यथा महाराष्ट, कर्नाटक, आंध्र प्रदेश, तमिलनाडु व तेलंगाना में 83 में पककर 59 क्विंटल प्रति हेक्टेयर उपज मिलती है।

मक्का : पूसा एच एम 4 संशोधित : भारतीय कृषि अनुसन्धान संस्थान, नई दिल्ली द्वारा वर्ष 2017 में विकसित मक्का की संकर किस्म में **ट्रिप्टोफेन 0.91 % व लाइसिन 3.62 %** पाया जाता है, जबकि मक्का की प्रचलित संकर किस्मों में ट्रिप्टोफेन 0-3-0-4 % तथा लाइसिन (1-5-2-0 %) पाया जाता है। यह किस्म पंजाब, हरियाणा, दिल्ली, कोटा खंड को छोड़कर राजस्थान, पश्चिमी उत्तर प्रदेश, उत्तराखंड का मैदानी क्षेत्र के लिए उपयुक्त है। यह किस्म 87 दिन में पककर 64 क्विंटल प्रति हेक्टेयर उपज देती है।

मक्का : पूसा एच एम 8 संशोधित : भारतीय कृषि अनुसन्धान संस्थान, नई दिल्ली द्वारा वर्ष 2017 में विकसित मक्का की संकर किस्म में **ट्रिप्टोफेन 1.06 % एवं लाइसिन 4.18 %** पाया जाता है। यह किस्म देश के दक्षिणी राज्यों यथा महाराष्ट, कर्नाटक, आंध्र प्रदेश, तमिलनाडु व तेलंगाना के लिए उपयुक्त है। इस किस्म से 95 दिन में पककर 62 क्विंटल प्रति हेक्टेयर उपज मिलती है।

मक्का : पूसा एच एम 9 संशोधित : भारतीय कृषि अनुसन्धान संस्थान, नई दिल्ली द्वारा वर्ष 2017 में विकसित मक्का की संकर किस्म में **ट्रिप्टोफेन 0.68 % एवं लाइसिन 2.97 %** पाया जाता है, यह किस्म देश

के दक्षिणी राज्यों यथा महाराष्ट, कर्नाटक, आंध्र प्रदेश, तमिलनाडु व तेलंगाना के लिए उपयुक्त है। यह किस्म 89 दिन में पककर 52 क्विंटल प्रति हेक्टेयर उपज देती है। यह किस्म बिहार, झारखण्ड, ओडिशा, उत्तर प्रदेश (पूर्वी भाग) तथा पश्चिमी बंगाल के लिए उपयुक्त है।

संकर बाजरा : एच एच बी 299 : हिसार कृषि विश्वविद्यालय द्वारा वर्ष 2017 में विकसित उच्च **आयरन (73.0 पी पी एम) तथा जिंक (41.0 पी.पी.एम.)** युक्त संकर बाजरा किस्म मध्यम पकाव अवधि (81 दिन) में पककर 32 क्विंटल औसत उपज देती है। बालियाँ मध्यम लंबे सुगठित व नश्तर आकृति की, दाने भूरे षट्कोणीय, परागकोष का रंग बैंगनी होता हैं। यह किस्म राजस्थान, गुजरात, हरियाणा, पंजाब, दिल्ली, महाराष्ट्र व तमिलनाडु के लिए संस्तुत है। मुख्य बीमारियों व कीड़ों की प्रतिरोधी किस्म के सिट्टों की लम्बाई 24 सेमी , मोटाई 3.7 सेमी तथा 1000–दानों का वजन 11.3 ग्राम होता है।

संकर बाजरा : एच एच बी 1200 Fe (2018) : इक्रीसेट, पतंचरु के सहयोग से वसंतराव नाइक मराठवाड़ा कृषि विद्यापीठ, परभणी (महाराष्ट्र) द्वारा विकसित बाजरा की प्रथम जैव संवर्धित संकर किस्म है, जिसमें **जस्ता (45– 50 पीपीएम) व लोहा (73 पीपीएम)** प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। यह किस्म मध्यम पकाव अवधि (78 दिन) में पककर 32 क्विंटल औसत उपज देती है। सिट्टा लम्बा गोलाकार, उच्च आयरन की मात्रा, उर्वरकों के लिए अत्यधिक उत्तरदायी किस्म राजस्थान, गुजरात, हरियाणा, पंजाब, दिल्ली, महाराष्ट्र, तेलंगाना व आंध्र प्रदेश के लिए संस्तुत है। डाउनी मिल्ड्यू व तना छेदक के लिए प्रतिरोधी किस्म के सिट्टों की लम्बाई 25 सेमी, मोटाई 3–4 सेमी तथा 1000–दानों का वजन 10.9 ग्राम होता है।

मसूर : पूसा अगेती मसूर : भारतीय कृषि अनुसन्धान संस्थान, नई दिल्ली द्वारा वर्ष 2017 में विकसित मसूर की इस किस्म में **आयरन की मात्रा 65 पी.पी.एम.** पाई जाती है, जो मसूर की प्रचलित किस्मों में उपस्थित आयरन 55 पी पी एम् की तुलना में अधिक है। यह किस्म उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश एवं छत्तीसगढ़ के लिए उपयुक्त है तथा 100 दिन में पककर 13 क्विंटल प्रति हेक्टेयर उपज प्राप्त होती है।

सरसों : पूसा मस्टर्ड 30 : भारतीय कृषि अनुसन्धान संस्थान, नई दिल्ली द्वारा वर्ष 2013 में विकसित सरसों की किस्म में **इरुसिक एसिड की मात्रा 2 %** से कम है, जो सरसों की प्रचलित किस्मों (40%) इरुसिक एसिड) से कम होता है । इसमें तेल की मात्रा 37.7 % पायी गयी है। यह किस्म उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थान एवं उत्तराखंड के लिए उपयुक्त है तथा 137 दिन में पककर 18 क्विंटल प्रति हेक्टेयर उपज प्राप्त होती है।

सरसों : पूसा डबल जीरो मस्टर्ड 31 : भारतीय कृषि अनुसन्धान संस्थान, नई दिल्ली द्वारा देश की केनोला गुणवत्ता युक्त भारतीय सरसों की प्रथम किस्म वर्ष 2016 में विकसित की गई थी। इसमें **इरुसिक एसिड (2 % से कम) व खली में ग्लूकोसिनोलेट (30 पी पी एम् से कम)** होता है, जबकि सरसों की प्रचलित किस्मों में इरुसिक एसिड (40% से अधिक) व खली में ग्लूकोसिनोलेट (120 पी पी एम् से अधिक) होता है। यह किस्म राजस्थान (उत्तरी और पश्चिमी भाग), पंजाब, हरियाणा, दिल्ली, पश्चिमी उत्तर प्रदेश, जम्मू कश्मीर के मैदानी भाग एवं हिमाचल प्रदेश के लिए उपयुक्त है तथा 142 दिन में पककर 23 क्विंटल प्रति हेक्टेयर उपज प्राप्त होती है। सिंचित दशा में बुवाई के लिए उपयुक्त किस्म में तेल की मात्रा 41% पाई जाती है।

फूलगोभी : पूसा बीटा केसरी 1 : देश की प्रथम जैव संवर्धित फूलगोभी किस्म में **बीटा केरोटीन** की मात्रा अधिक (8.10 पी पी एम) पाई जाती है, जबकि इसकी प्रचलित किस्मों में बीटा केरोटीन की मात्रा नगण्य होती है। राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र के लिए उपयुक्त किस्म से फूलगोभी की उपज 40–50 टन प्रति हेक्टेयर प्राप्त होती है। भारतीय कृषि अनुसन्धान संस्थान, नई दिल्ली द्वारा वर्ष 2015 में विकसित की गई थी।

आलू : भू सोना : आलू की इस किस्म में बीटा केरोटीन की मात्रा अधिक (14 मि.ग्रा. प्रति 100 ग्राम) पाई जाती है, जबकि इसकी प्रचलित किस्मों में **बीटा केरोटीन** की मात्रा 2.0–3.0 मिलीग्राम प्रति 100 ग्राम होती है। उड़ीसा के लिए उपयुक्त किस्म से आलू कंद की औसतन उपज 20 टन प्रति हेक्टेयर प्राप्त होती है, जिसमें शुष्क पदार्थ 27-29 % , स्टार्च 20 % एवं कुल शर्करा की मात्रा 2.0-2-4 % पाई जाती है। यह किस्म केंद्रीय कंद फसल अनुसन्धान संस्थान तिरुवनंतपुरम, केरल द्वारा वर्ष 2017 में विकसित की गई।

शकरकंद : भू कृष्णा : शकरकंद की इस किस्म में **एंथोसाइनिन** की मात्रा अधिक (90 मिलीग्राम प्रति 100 ग्राम) पाई जाती है, जबकि इसकी प्रचलित किस्मों में एंथोसाइनिन की मात्रा नगण्य होती है। उड़ीसा के लिए उपयुक्त किस्म से शकरकंद की औसतन उपज 18 टन प्रति हेक्टेयर प्राप्त होती है, जिसमें शुष्क पदार्थ 24-25.5 %, स्टार्च 19.5 % एवं कुल शर्करा की मात्रा 1.9-2.2 % पाई जाती है। लवणता सहनशील किस्म केंद्रीय कंद फसल अनुसन्धान संस्थान तिरुवनंतपुरम, केरल द्वारा वर्ष 2017 में विकसित की गई।

अनार : शोलापुर लाल : अनार की इस किस्म में **आयरन (5.6–6.1 मि.ग्रा. प्रति 100 ग्राम), जिंक (0.64–0.69 मि.ग्रा. प्रति100 ग्राम)** तथा **विटामिन सी (19.4-19.8 मि.ग्रा. प्रति 100 ग्राम)** अधिक पाई जाती है, जबकि अनार की प्रचलित किस्म गणेश में आयरन (2.7–3.2 मि.ग्रा. प्रति 100 ग्राम), जिंक (0.50–0.54 मि.ग्रा. प्रति 100 ग्राम) तथा विटामिन सी (14.2–14.6 मि.ग्रा. प्रति 100 ग्राम) होता है। देश के अर्ध शुष्क क्षेत्रों के लिए उपयुक्त किस्म से औसतन 23–27 टन प्रति हेक्टेयर फलों की पैदावार प्राप्त हो जाती है, यह किस्म राष्ट्रीय अनार अनुसन्धान केंद्र, पुणे द्वारा वर्ष 2017 में विकसित की गई।

उन्नत बीज उत्पादन मे अलगाव (पृथक्करण) दूरी एवं इसका महत्व

यांत्रिक कृषि फार्म, कोटा एवं कृषि महाविद्यालय, हिण्डोली, बूंदी
राजेश कुमार शर्मा, राजेश कुमार महावर, अर्जुन कुमार वर्मा एवं प्रताप सिंह

फसल उत्पादन मुख्य रुप से उपयोग मे लिये गए बीज की गुणवत्ता पर निर्भर करता है। अच्छी गुणवत्ता वाला बीज हमेशा अच्छी एवं अधिक पैदावार का धोतक माना जाता है। गुणवत्तापूर्ण बीज तभी माना जाता है जब बीज भैतिक एवं आनुवांि ाक रूप से शुद्ध एवं कीट व्याधि मुक्त हो। बीज को गुणवत्तापूर्ण बनाए रखना एक अतिआवश्यक एवं महत्वपूर्ण क्रिया है क्योंकि जब बीज की शुद्धता खराब हो जाती है, तो उसे सुधारना बहुत मुशकिल ही नही बल्कि बहुत लम्बी एवं खर्चीली प्रक्रिया है, और बीज गुणवत्ता ह्रास बढता जाता है, जिसे पूरी तरह रोका भी नहीं जा सकता। बीज की शुद्धता को बनाए रखने के लिए बीज उत्पादन की विभिन्न अवस्थाओं से गुजरना पडता है। जिसमें पृथक्करण या अलगाव दूरी प्रमुख हैं।

पृथक्करण दूरी

फसल की अनुवांशिक शुद्धता बनाये रखने के लिए बीज उत्पादन कार्यक्रम लेने वाले खेत एवं उसी फसल जाती के अन्य खेतों के बीच न्यूनतम दूरी को पृथक्करण दूरी कहा जाता है। बीज फसल में पर परागण के कारण होने वाली अशुद्धता तथा रोगों के फैलाव आदि से बचाने के लिए एक निश्चित दूरी पर बीज फसल को उगाया जाता है। यह भारतीय बीज अधिनियम की मूलभूत आवश्यकता है। पृथक्करण दूरी एक फसल से दूसरी फसल में भिन्न होती है। इस दूरी को अलगाव दूरी के रूप में जाना जाता है। पर–परागणित और अक्सर पर–परागण वाली फसलों में अवांछित पराग से परागण को रोकने के लिए और स्व–परागण वाली प्रजातियों में यांत्रिक मिश्रण से बचने के लिए अलगाव दूरी आवश्यक है। कुछ मामलों में, उदाहरण के लिए, संकर मक्का में परागणकर्ता की सीमा पंक्तियों की संख्या बढा कर रोपण करके और बीज उत्पादन के लिए एक बड़ा क्षेत्र चुनकर न्यूनतम अलगाव दूरी को काफी कम किया जा सकता है। उन सभी फसलों के मामले में जहां पराग संदूषण की आशंका है, आधार बीज फसल के लिए आवश्यक न्यूनतम अलगाव दूरी प्रमाणित बीज फसल की तुलना में काफी अधिक है।

मोटे तौर पर स्वयं परागित फसलों में 3 मीटर, आंशिक परपरागित फसलों में 30 मीटर तथा परपरागित फसलों में 200 मीटर दूरी रखी जाती है। कीट परपरागित (1000 मीटर तक) तथा वायु परागित फसलों में (वायु की दिशा के अनुसार) और अधिक दूरी रखनी पड़ती है। आधार बीज उत्पादन में प्रमाणित बीज की तुलना में अधिक (प्रायः दोगुनी) दूरी रखनी पड़ती है। यदि बीज फसल व अन्य खेतों के बीच में कोई रुकावट खड़ी कर दी जाये तो पृथक्करण दूरी कम की जा सकती है, जैसे संकर बीज उत्पादन में सीमान्त पंक्तियों का बोया जाना, किसी दूसरी असम्बन्धित फसल जैसे ढैंचा की पंक्तियां लगाना अथवा कोई भौतिक बाधा, जैसे 2 मीटर ऊंची पॉलिथीन शीट खड़ी करना। पौधे या पौधों के समूह को किसी तरह से ढककर, फूलों पर लिफाफे लगाकर, पृथक्करण वाले पौधे के फूलों से नर अंगों को अलग करके भी पृथक्करण किया जा सकता है। जब बीज फसल को भिन्न फसल के खेतों से अपेक्षित दूरी पर उगाना संभव नहीं होता तो बीज फसल को अगेती या पछेती फसल के रूप में उगाया जाता है, जिससे बीज फसल व निकटस्थ भिन्न फसल में पुष्पन भिन्न समय पर हो। भिन्न किस्मों के बीजों को कटाई के बाद अलग रखा जाता है और गहाई व संसाधन क्रियायें भी अलग–अलग की जाती हैं, जिससे यांत्रिक मिश्रण न हो पाये। अलगाव दूरी अवांछित परागण को रोककर किस्म की आनुवंशिक शुद्धता को बनाये रखता है। अलगाव स्थान–दूरी/समय/बाधा (ढैंचा) लगाकर प्राप्त किया जा सकता है।

अलगाव (पृथक्करण) के प्रकार

अलगाव को तीन वर्गो में वर्गी त किया जा सकता है। ये इस प्रकार हैं, दूरी अलगाव, समय अलगाव, बाधा अलगाव और भौगोलिक अलगाव।

1. दूरी अलगाव

- यह प्रदूषक बीज फसल और उसी फसल की अन्य किस्मों के बीच प्रदान की गई मापनीय दूरी है।
- यह परागण व्यवहार के आधार पर फसलों के साथ भिन्न होता है। स्व–परागण वाली फसलों के लिए अलगाव की दूरी कम होगी और पर–परागण वाली फसलों के मामले में दूरी अधिक होगी।
- संदूषित खरपतवार प्रजातियों के लिए भी अलगाव देखा जाना चाहिए।
- किस्मों और संकर के लिए अलगाव की दूरी अलग–अलग होगी जहां किस्मों (इनब्रेड/प्योरलाइन) में संकर की तुलना में कम अलगाव होगा।
- यह बीज की आनुवंशिक शुद्धता को प्रभावित करने वाला सबसे महत्वपूर्ण कारक है।
- यह आनुवंशिक शुद्धता रखरखाव (जीपीएम) के लिए सबसे आसान प्रबंधन तकनीक है।

फसलों/किस्मों के बीच दूरी अलगाव

2. समय अलगाव

- यह बुआई की तारीख को इस तरह से समायोजित करके किस्मों/प्रजातियों/संदूषकों को अलग करना है ताकि दोनों फसलों में एक ही समय में फूल न आएं।
- निरंतर फूल आने की आदत (जैसे रेडग्राम, बाजरा) के कारण अनिश्चित वृद्धि की आदत वाली फसलों में इसका व्यापक रूप से अभ्यास नहीं किया जाता है।
- यहां जैसे–जैसे फसल में अलग–अलग तिथियों पर फूल आते है/क्रॉसिंग की अवधि संशोधित की जाती है और आनुवंशिक शुद्धता बनाए रखी जाती है।
- प्रमाणीकरण के तहत समय अलगाव स्वीकार नहीं किया जाता है।

3. बाधा अलगाव

- बीज उत्पादन के क्षेत्र में विदेशी परागकणों के प्रवेश को रोकने के लिए बीज उत्पादन वाली फसल के आसपास भौतिक अवरोध, विशेष रूप से मेड़ों पर अच्छी ऊंचाई वाली तथा घनी रोपाई वाली फसल उगाई जानी चाहिए। इसका अभ्यास पुष्प भाग या पूरे पौधे को ढककर किया जा सकता हैं। जैसेः– पेपर बैग।
- यह फसलों/किस्मों के बीच अवरोध पैदा करके फसल को अलग करना है जिससे संदूषण की आशंका होती है।
- बाधा या तो सजीव या निर्जीव हो सकती है।
- पॉलिथीन शीट का उपयोग अवरोधक के रूप में किया जा सकता है।
- दो फसलों/किस्मों/संदूषणों के बीच संदूषण से बचने के लिए कैसुरीना, दैंचा, सेसबानिया जैसी घनी उगाई जाने वाली घनी वृक्ष वाली फसलें बाधाओं के रूप में उगाई जाती हैं।
- यह अन्य क्षेत्रों से पराग के लिए एक फिल्टर के रूप में कार्य करता है।

फसलों/किस्मों के बीच बाधा अलगाव

4. भौगोलिक अलगाव

- यह अलग–अलग ऊंचाई पर फसल बोने से मिलने वाला अलगाव है।
- यह केवल पहाड़ी क्षेत्र में ही संभव है।
- निचली छत पर उगाई गई फसलें ऊंची छत वाली फसलों को दूषित नहीं करेंगी क्योंकि फूलों में अंतर होगा।

अलगाव (पृथक्करण) दूरी को प्रभावित करने वाले कारकः

- **फसल का परागण व्यवहार :** जो पौधे मुख्य रूप से स्व–परागण करते हैं उन्हें कम अलगाव दूरी की आवश्यकता होती है, जबकि जो पौधे मुख्य रूप से पर–परागण करते हैं उन्हें अधिक दूरी की आवश्यकता होती है।
- **परागण एजेंट :** परागण कारक अजैविक परागण (पवन, पानी और वर्षा परागण) और जैविक परागण (कीट परागण) विभिन्न किस्मों के आधार पर अलगाव दूरी भिन्न होती है। परागण विधिः प्रजातियों में परागण विधि अलगाव दूरी/समय की सीमा के निर्धारित करता है।
- कीट और पवन परागण वाली फसल को अधिक अलगाव दूरी की आवश्यकता होती है।
- **पराग लक्षण :** पराग पथ, जीवन क्षमता, व्यवहार्यता, पराग उत्पादन क्षमता, पराग मेट और संश्लेषण का समय आदि अलगाव दूरी को प्रभावित करते हैं। यदि किसी फसल में अधिक पराग उत्पादन क्षमता, व्यवहार्यता और पराग लंबी दूरी तय करता है तो उस फसल की अनुवांशिक शुद्धता बनाये रखने के लिए अधिक अलगाव दूरी की आवश्यकता होती है।
- **नामित रोग :** बीज वाली फसल नामित बीमारी से संक्रमित होती है जैसे गेहूं की ढीली स्मट, ज्वार अनाज स्मट या कर्नेल स्मट आदि को सामान्य फसलों की तुलना में अधिक अलगाव दूरी की आवश्यकता होती है।
- **बीज उत्पादन का प्रकार :** संकर बीज उत्पादन के लिए किस्म सुधार (इनब्रेड/प्योरलाइन) की तुलना में अपेक्षाकृत अधिक अलगाव दूरी की आवश्यकता होती है।
- **बीज का वर्ग –** बीज का वर्ग जितना अधिक होगा दूरी उतनी अधिक होगी। यानी प्रजनक बीज उत्पादन के लिए आधार बीज उत्पादन की तुलना में अपेक्षाकृत बड़ी अलगाव दूरी की आवश्यकता होती है यानी अलगाव दूरी प्रजनक एवं आधार बीज की तुलना में प्रमाणित बीज की कम होती है।
- **खेत का आकार :** खेत का आकार जितना छोटा होगा अलगाव दूरी उतनी ही अधिक होगी।

अलगाव (पृथक्करण) दूरी का महत्वः अलगाव अवांछित पर–परागण को रोकता है। यह किस्मों को सही प्रकार में रखने के लिए आवश्यक प्राथमिक प्रयास है। अलगाव एक ही प्रजाति की दो किस्मों के बीच पर–परागण की संभावनाओं को सीमित करने या समाप्त करने के लिए आवश्यक दूरी होती है। आप कई तरीकों से अलगाव का प्रबंधन कर सकते हैंः दूरी से, फूल आने के समय से, या रोकथाम द्वारा। दूरी के आधार पर अलगाव सबसे विश्वसनीय तरीका है, जिसमें विविधता और प्रदूषित पराग के किसी भी स्रोत के बीच पर्याप्त दूरी प्रदान करना शामिल है ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि विविधता प्रकार के अनुरूप बनी रहे।

तालिका : 1 पृथ्क्करण की दूरी (मीटर में)

फसल का नाम	प्रजनक बीज	बीज आधार	प्रमाणित बीज	सत्यचिन्हित बीज
गेहुँ, धान, सोयाबीन एवं मूंगफली	3	3	3	3
उड़द, मूंग, चवला, मसूर, चना, एवं मटर	10	10	5	5
टमाटर एवं मैथी	50	50	25	25
सरसों एवं तिल	100	100	50	50
ज्वार, सौफ, धनिया एवं अरहर	200	200	100	100
मक्का एवं बाजरा	400	400	200	200
मिर्च, भिंडी और गाजर	400	400	200	200
जीरा	800	800	400	400
बैंगन	200	200	100	100
कपास	50	50	30	30
प्याज	1000	1000	800	800
फूलगोभी एवं चौलाई	1000	1000	500	500
पत्तागोभी, चुकंदर एवं मूली	1600	1600	1000	1000

दूरी/पौधे का घनत्व : पंक्तियों के बीच और पंक्तियों के भीतर पौधों की दूरी भी बीज की उपज और गुणवत्ता को प्रभावित करती है। जब रसायनों का उपयोग किया जाता है तो रोग की घटनाओं को कम करने और कीटनाशक कवरेज में सुधार के लिए बीज फसल में अच्छा वातन महत्वपूर्ण है। पौधों के कम घनत्व से खरपतवारों के पनपने की क्षमता बढ़ जाएगी। पौधों का घनत्व बहुत कम होने से कटाई से पहले फसल के टिकने की संभावना बढ़ जाती है। फसल घनत्व खेती के तरीकों और फसल को भी प्रभावित करेगा, खासकर संकरों में जब नर और मादा माता–पिता की कटाई अलग–अलग की जाती है। उच्च पौधों के घनत्व के परिणामस्वरूप छाया प्रभाव के कारण प्रकाश की कम उपलब्धता होती है और बीज की उपज और गुणवत्ता कम हो जाती है।

सीमा पंक्तियाँ : आमतौर पर सीमा पंक्तियाँ पुरुष पैतृक पंक्तियों के साथ बढ़ाई जाएंगी। सीमा पंक्तियों के लाभ निम्नानुसार हैं

- फसल को संदूषण से बचाने में मदद करता है।
- अन्य स्रोतों से पराग द्वारा संदूषण को रोकने के लिए बाधा।
- मादा माता–पिता को अतिरिक्त पराग की आपूर्ति करें जिससे बीज सेट में वृद्धि हो।
- आइसोलेशन दूरी को कम करने में मदद करता है।
- जैसे–मक्के में, अलगाव के प्रत्येक 15 मीटर के लिए सीमा पंक्ति को प्रतिस्थापित किया जा सकता है।

सीमा पंक्तिया

❋❋❋

गोंद कतीरा: स्रोत और उपयोगिता

पूजा कुमारी, कनिका उपाध्याय, अंजू एस. विजयन, एवं एस.बी.एस.पांडेय
उद्यानिकी एवं वानिकी महाविद्यालय, झालावाड़, कृषि विश्वविद्यालय, कोटा, राजस्थान

गोंद पादप उत्पादों का एक समूह है, जो मुख्य रूप से पादप सेलूलोज के विघटन के कारण बनता है। इस प्रक्रिया को गमोसिस के रूप में जाना जाता है। गोंद का उत्पादन बड़ी संख्या में परिवारों के सदस्यों द्वारा किया जाता है, लेकिन इसका दोहन व्यावसायिक रूप से कुछ पेड़ प्रजातियों लेगुमिनोसे, स्टेरकुलियासी और कॉम्ब्रेटेसी परिवारों तक ही सीमित है। गोंद देने वाले महत्वपूर्ण पेड़ हैं एकेसिया निलोटिका (बबूल), एकेसिया कैटेचू (खैर), स्टेरुकुलिया यूरेन्स (कुल्लू), एनोजीसस लैटिफोलिया (धवड़ा), ब्यूटिया मोनोस्पर्मा (पलास), बाउहिनिया रेटुसा (सेमल), लानिया कोरोमंडेलिका (लेंडिया) और अजादिराक्टा इंडिका (नीम), ग्वार, इमली, कैसिया टोरा आदि जैसे कुछ पौधों के बीजों से भी गोंद निकाला जाता है। ग्वार गम प्रमुख बीज आधारित प्राकृतिक गोंद है।

स्टरकुलिया यूरेन्स, एक मध्यम से बड़े आकार का पर्णपाती पेड़ है जो 300–750 मीटर की ऊंचाई पर उष्णकटिबंधीय जलवायु वाले शुष्क चट्टानी पहाड़ी भूमि के पर्णपाती जंगलों में बेतहाशा उगता है। यह वाणिज्यिक कराया गोंद का प्रमुख स्रोत है, जब पेड़ प्राकृतिक या कृत्रिम रूप से घायल हो जाता है तो नरम गोंद निकलता है। कराया गोंद का उत्पादन पेड़ के तने को जलाने या दागने और छाल के एक टुकड़े को हटाने या तने में छेद करके किया जाता है। घावों से गोंद रिसता है और एकत्र किया जाता है, धोया जाता है और सुखाया जाता है, जिसे आगे वर्गीकृत किया जाता है। एक परिपक्व पेड़ प्रति मौसम में 1 से 5 किलोग्राम गोंद पैदा कर सकता है। अलग–अलग क्षेत्रों से अलग–अलग प्रोटीन सामग्री (11.5-30.8%) और तेल (24-29%) के साथ स्टरकुलिया यूरेन्स बीज की रासायनिक संरचना की सूचना दी गई है। चोट लगने के बाद गोंद को एकत्र किया जाता है और प्रसंस्करण के लिए ग्रेडिंग सेंटर में भेजा जाता है। इसे 5 अलग–अलग ग्रेडों में मैन्युअल रूप से वर्गीकृत किया जाता है, जो भारतीय एगमार्क संगठन के साथ पंजीकृत हैं। स्टेरकुलिया यूरेन्स पर्णपाती वन वृक्ष है जो रेगिस्तानी क्षेत्रों में पाया जाता है और एशिया का मूल निवासी है, जिसमें उष्णकटिबंधीय भारतीय उपमहाद्वीप, उत्तरी और मध्य भारत, भारतीय पश्चिमी तट, बर्मा और श्रीलंका के शुष्क वन क्षेत्र शामिल हैं और गोंद का मुख्य स्रोत रहा है। यह भारत में उप–हिमालयी इलाकों, गुजरात, राजस्थान, मध्य प्रदेश, आंध्र प्रदेश, उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र और केरल के माध्यम से व्यापक रूप से वितरित किया जाता है। स्टेरकुलिया यूरेन्स, जिसे आमतौर पर कड़ाया, कराया, कटेरा, कुटेरा, घोस्ट ट्री और इंडिया गम आदि के नाम से जाना जाता है (डेविडसन, 1980)। गमोसिस और गोंद के निकलने की प्रक्रिया के कारण इस पेड़ को 'इंडियन ट्रैगैकैंथ' के नाम से भी जाना जाता है, जो कई गुणों में गोंद ट्रैगैकैंथ के समान है और अतीत में इसके विकल्प के रूप में उपयोग किया जाता था। कम कीमत और गम ट्रैगैकैंथ की तुलना में कराया गोंद की श्रेष्ठता के कारण, इसका उपयोग गम ट्रैगैकैंथ में मिलावट के रूप में किया गया है, जबकि दोनों गोंदों के भौतिक रासायनिक गुण अलग–अलग हैं। यह मध्य और उत्तरी भारत की 300–750 मीटर की ऊंचाई पर, क्वार्टजाइट, गनीस और शिस्ट से समृद्ध मिट्टी वाली सूखी पहाड़ियों, खुली चोटियों, अपक्षयित ढलानों और चट्टानी दरारों पर उगता है। पेड़ एक कठोर प्रजाति है और उच्च तापमान का विरोध कर सकता है, और कम पानी की आपूर्ति में भी जीवित रह सकता है, अर्थात, औसत वार्षिक तापमान और क्रमशः 10-40 °c और 500–1900 मिमी वर्षा। वर्तमान में, अत्यधिक दोहन के कारण, एस. यूरेन्स भारत में सबसे अधिक खतरे वाले एनडब्ल्यूएफपी पेड़ों में से एक है। यह उन कुछ क्षेत्रों में लगभग विलुप्त हो गया है जहां यह अतीत में आम था। इससे पहले, प्रा तिक स्टैंडों की तेजी से घटती संख्या को रोकने के लिए, कई भारतीय राज्यों ने इस गोंद के व्यापार पर प्रतिबंध लगा दिया है। हालाँकि, इस प्रक्रिया में, वे पारंपरिक गोंद संग्राहकों को आजीविका के स्रोत से वंचित कर रहे हैं। इस समीक्षा का उद्देश्य राष्ट्रीय महत्व की दृष्टि से एस.यूरेन्स के अत्यधिक दोहन, जातीय–औषधीय महत्व, संरक्षणात्मक चुनौतियों और ष्टिकोणों को संबोधित करना है।

गमोसिस

पौधों में रक्षा प्रणाली होती है, जो चोट या घाव के जवाब में, मसूड़ों को आंसुओं के रूप में छोड़ती है, जिसे आमतौर पर गम एक्सयूडेट के रूप में जाना जाता है। करया गोंद का व्यावसायिक दोहन आग लगाकर, छीलकर या कुल्हाड़ी या दरांती का उपयोग करके बोले के आधार पर गहरे कट लगाकर किया जाता है, जिससे अक्सर काटे गए पेड़ मर जाते हैं। गोंद कराया आदिवासी अर्थव्यवस्था के लिए महत्वपूर्ण है और इसका व्यापार मूल्य पर्याप्त है, इसलिए उपज बढ़ाने और दोहन किए गए पेड़ों के अस्तित्व को सुनिश्चित करने के लिए वैज्ञानिक और टिकाऊ दोहन तरीके विकसित किए गए। गोंद की पैदावार बढ़ाने और घाव भरने के लिए एथेफश्वन का उपयोग करके पैदावार में पर्याप्त वृद्धि के साथ टैपिंग की एक सरल और सुरक्षित तकनीक विकसित की गई है। यह गोंद सबसे समृद्ध और सस्ते प्राकृतिक कच्चे माल में से एक है। तना और जड़ें गोंद के मुख्य स्रोत हैं और यह स्टरकुलिया यूरेन्स के युवा तनों के मज्जा और प्रांतस्था में मौजूद नलिकाओं से स्रावित होता है।

स्टरकुलिया के पेड़ प्रजातियों के आधार पर 10 मीटर तक ऊंचे हो सकते हैं और इसका उपयोग अपने जीवनकाल के दौरान लगभग पांच बार किया जा सकता है, जिसकी कुल उपज मौसम के अनुसार 1–5 किलोग्राम के बीच होती है। स्थानीय आबादी ने गम्बी चीरे या तनों की टैपिंग प्राप्त की और रिसाव तुरंत शुरू हो जाता है और कई दिनों तक जारी रहता है, थोक निकास को गर्म और शुष्क जलवायु में सुखाया जाता है, तोड़ दिया जाता है, छाल और विदेशी पदार्थ को हटाने के लिए साफ

किया जाता है और गुणवत्ता के अनुसार वर्गीकृत किया जाता है और संग्रहीत किया जाता है। उच्चतम गुणवत्ता वाला कच्चा गोंद अप्रैल, मई और जून के गर्म महीनों के दौरान एकत्र किया जाता है। अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में उपयोग किए जाने वाले ग्रेड श्रेष्ठ (नंबर 1, 2 और 3) और सिफ्टिंग हैं। सुपीरियर नंबर 1 गम का उपयोग भोजन और फार्मास्युटिकल तैयारियों में किया जाता है क्योंकि इसमें उच्च चिपचिपाहट, स्पष्ट रंग, अच्छी घुलनशीलता और नमी बनाए रखने की क्षमता होती है। गोंद को दानों या पाउडर के रूप में पेश किया जाता है।

गोंद का निकलना

औद्योगिक अनुप्रयोगों के कारण पश्चिमी देशों में करया गोंद की मांग बढ़ रही है। हालाँकि, इसकी पारंपरिक निष्कर्षण विधियाँ अवैज्ञानिक होने के कारण पेड़ों को गंभीर क्षति पहुँचती है और अंततः पेड़ों की संख्या दिन–ब–दिन कम होती जा रही है। उचित वैज्ञानिक टैपिंग विधि जिसे बोर होल विधि के रूप में जाना जाता है, तैयार की गई है जहां पेड़ के तने के अंदर 5 सेमी गहरा एक छोटा छेद किया जाता है और छेद पर गोंद प्रेरक का छिड़काव किया जाता है। यह तकनीक सरल और सुरक्षित है, जिससे काटे गए पेड़ों की स्थायी उपज, पुनर्जनन और अस्तित्व सुनिश्चित होता है। गोंद की पैदावार पांच गुना से अधिक बढ़ गई है और गोंद की गुणवत्ता में भी सुधार हुआ है। इसके अलावा, पौधे भी घायल हिस्से पर प्राकृतिक उपचार के प्रति बहुत अच्छी प्रतिक्रिया देते हैं। यह तकनीक सरल है, इसमें किसी विशेष कौशल की आवश्यकता नहीं है और इसे वन क्षेत्रों में रहने वाले अकुशल आदिवासियों को सिखाया जा सकता है। गोंद की सतत आपूर्ति और अच्छा आर्थिक लाभ सुनिश्चित करने के लिए गम टैपिंग गर्मियों के महीनों यानी अप्रैल से मई में की जानी चाहिए। पिछले कुछ वर्षों में, विभिन्न कारकों के कारण आर्थिक रूप से महत्वपूर्ण इस गैर इमारती वन प्रजाति की प्राकृतिक प्रचुरता में काफी गिरावट आ रही है। इसमें शामिल है कि इस पौधे की प्रजाति का प्राकृतिक प्रसार केवल बीजों और पारंपरिक तरीकों जैसे ग्राफ्टिंग, बडिंग, एयर लेयरिंग और कटिंग के माध्यम से होता है, जो पुनर्गणना के कारण प्रसार करने में असफल होते हैं। ताजे बीजों में 100% अंकुरण क्षमता बनी रहती है जो बाद में समय के साथ घटती जाती है और केवल 20% तक ही रह जाती है।

गोंद

निष्कर्ष

स्टेरकुलिया यूरेन्स रॉक्सब की पर्यावरण–अनुकूल प्रकृति और बहुउद्देशीय गतिविधियाँ के परिणामस्वरूप राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में इसकी मांग बढ़ी है। स्टेरकुलिया यूरेन्स की छाल से निकलने वाला गोंद शुष्क मौसम के साथ–साथ गीले मौसम में भी एकत्र किया जाता है। लेकिन सूखे मौसम में काटा गया गोंद गीले मौसम की तुलना में उच्च गुणवत्ता वाला होता है। स्थानीय लोगों द्वारा पारंपरिक, अपरिष्कृत, वैज्ञानिक और अवैज्ञानिक तरीकों का पालन करके गोंद का दोहन किया जाता है। परिणामस्वरूप, गहरे घाव वाले कटे हुए पेड़ अंततः मर रहे हैं। इसके अलावा, किया हुआ गोंद के पॉलिमर श्रेष्ठ होने के कारण, गोंद के असाधारण गुणों के कारण फार्मा, भोजन, सौंदर्य प्रसाधन और औद्योगिक अपशिष्ट उपचार में उपयोग के लिए सिंथेटिक पॉलिमर की तुलना में अधिक पसंद किए जाते हैं। इसके अलावा, पौधों के सूक्ष्मप्रवर्धन के लिए जेलिंग एजेंट के रूप में गोंद अगर–अगर का एक लागत प्रभावी विकल्प है। जीवित प्रणाली में बायोडिग्रेडेबिलिटी, बायोकम्पैटिबिलिटी और नवीकरणीयता, आसान भंडारण और रखरखाव और लागत प्रभावशीलता के कारण, यह गोंद भोजन, फार्मास्युटिकल और औद्योगिक उपयोगों में उपयोग के लिए सुरक्षित पाया जाता है। इसलिए, गम की कटाई के लिए उपयोग किए जाने वाले पेड़ों को मरने से बचाने और इसकी रासायनिक संरचना के बारे में ज्ञान प्राप्त करने के लिए वैज्ञानिक दोहन, व्यवस्थित संग्रह और कटाई के तरीकों का मानकीकरण आवश्यक है।

गोंद कराया के अनुप्रयोग

❋❋❋

औषधीय पौधों में जैविक खेती का महत्व

रामबाबू चौधरी, कनिका उपाध्याय, अंजू एस. विजयन एवं एस.बी.एस.पांडेय
उद्यानिकी एवं वानिकी महाविद्यालय, झालावाड, कृषि विश्वविद्यालय, कोटा, राजस्थान

जैविक खेती एक ऐसी प्रणाली है जो प्राकृतिक तरीकों से खेती की प्रक्रिया को समझती है और प्रदूषण और प्रकृति के प्रति सावधानीपूर्ण दृष्टिकोण को बढ़ावा देती है। औषधीय पौधों में भी जैविक कृषि का महत्वपूर्ण स्थान है, क्योंकि यह उच्च गुणवत्ता और शुद्धता वाले औषधीय उत्पादों की प्राप्ति में मदद करता है। जैविक खेती में कीमिकल्स के प्रयोग की बजाय प्राकृतिक उर्वरक और उपयोगी कीटनाशकों का प्रयोग होता है, जिससे औषधीय पौधों के गुणवत्ता में वृद्धि होती है और वातावरण को हानि नहीं पहुंचती। इससे उत्पादों में उच्चतम और प्राकृतिक गुणों की सुरक्षा होती है और साथ ही किसानों की आर्थिक वृद्धि भी होती है। जैविक कृषि की इस प्रणाली से हम न सिर्फ औषधीय पौधों के उत्पादों की गुणवत्ता बढ़ा सकते हैं, बल्कि प्राकृतिक संसाधनों की रक्षा भी कर सकते हैं और स्वस्थ्य जीवन को साधने में मदद कर सकते हैं। औषधीय एवं सुगंधित पौधों के उत्पादन में भारत विश्व में अग्रणी है। राष्ट्रीय औषधीय पादप बोर्ड और खाद्य एवं कृषि संगठन के अनुसार सभी औषधीय एवं सुगंधित पौधों की खेती जैविक तरीके से करनी चाहिए। जैविक रूप से उगाए गए औषधीय और सुगंधित उत्पाद न केवल वैष्विक बाजार में आसानी से स्वीकार्य हैं बल्कि उन्हें पारंपरिक खेती से उगाए गए दामों की तुलना में फायदा भी मिलता है। औषधीय पौधों की सफल खेतीं उचित मिट्टी में की जाती है, जो उनके उत्पादन और विकास के लिए सहायक हो। ज्यादातर औषधीय पौधे अच्छे सूरज की रौशनी ए उचित जलवायु में उगाने के लिए जरूरत होती है, जैसे कि उन्हें सही तापमान और आवश्यक वर्षा की आवश्यकता होती है। औषधीय पौधों की उचित पोषण की आवश्यकता होती है, जिसमें मुख्यतः नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, और पोटैशियम शामिल होते हैं और समृद्धि से भरपूर जलस्रोत की उपलब्धता होनी चाहिए। सही सिंचाई की आवश्यकता होती है ताकि पौधों को पर्याप्त मात्रा में पानी मिल सके। औषधीय पौधों की सही तकनीक से रोपण और खेती करने की आवश्यकता होती है, जिससे उनका सही विकास हो सके। उचित प्रूनिंग और प्रुनिंगः कुछ पौधों को सही समय पर प्रूनिंग और प्रुनिंग की आवश्यकता होती है, ताकि उनका विकास सही दिशा में हो सके। पौधों को सही रूप से रोग और कीट से बचाने के लिए उचित प्रबंधन की आवश्यकता होती है।

अतः सरकार जैविक खेती को बढ़ावा देने हेतु किसानों को प्रोत्साहित कर रही है। जिसके परिणाम स्वरूप 2019 में जैविक खेती का क्षेत्र बढ़कर 22,99,222 हेक्टयर हो गया है. हालांकि, आज भी यह परंपरागत षि क्षेत्र की तुलना का 1.3 प्रतिशत है. इसका मुख्य कारण बढ़ती हुई जनसंख्या की आपूर्ति के लिए परंपरागत खेती की दक्षता है, जोकि उसके द्वारा प्राप्त उत्पाद की मांग को बढ़ावा दे रहे हैं. किन्तु इन उत्पादों अथवा फसलों के उत्पादन में उपयोग होने वाले रासायनिक खाद एवं कीटनाशक की बढ़ती मात्रा दूरगामी दुष्प्रभाव का संकेत है, जिन्हें शुरुआत में नजरअंदाज किया गया. जैविक खेती एक प्रणाली है जिसमें केवल प्राकृतिक तत्वों का उपयोग करके खेती की जाती है और किसान जल, ऊर्जा, और भूमि संसाधनों का सही तरीके से प्रबंधन करते हैं। जैविक खेती का उद्देश्य पूरी दुनिया में प्राकृतिक संसाधनों को सुरक्षित रखना है और उत्पादों की गुणवत्ता बनाए रखना है।

औषधीय पौधे

औषधीय पौधों की जैविक खेती इस क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। औषधीय पौधे मनुष्यों के स्वास्थ्य में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं और उनमें विभिन्न प्रकार के औषधीय गुण होते हैं जो रोगों के उपचार में सहायक होते हैं। जैविक खेती के तरीकों का उपयोग करके औषधीय पौधों की खेती करने से कई फायदे हो सकते हैं।

- **विशेष औषधीय गुणवत्ता:** जैविक खेती में प्राकृतिक उर्वरकों का प्रयोग होता है जिससे पौधों में विशेष औषधीय गुणवत्ता बढ़ती है।
- **पर्यावरण सुरक्षा:** जैविक खेती में जल, ऊर्जा, और प्राकृतिक संसाधनों का सही तरीके से प्रबंधन होता है, जिससे पर्यावरण को हानि नहीं पहुँचती।

- **जीवन की विविधता की सुरक्षा :** जैविक खेती में जीवों के लिए सुरक्षित और स्थायी आवास प्रदान करने वाले पर्यावरण के साथ संवाद बनाया जाता है।
- **बीमारियों का प्रबंधन :** जैविक खेती में बीमारियों के प्रबंधन के लिए केमिकल्स की बजाय प्राकृतिक तरीकों का प्रयोग होता है, जिससे पौधों की सुरक्षा होती है और उनके औषधीय गुण सही रूप से बने रहते हैं।
- **स्वास्थ्यप्रद उत्पादों का उत्पादन :** जैविक खेती से प्राप्त उत्पाद स्वास्थ्यप्रद होते हैं, क्योंकि इसमें कोई हानिकारक केमिकल्स नहीं होते हैं और उन्हें प्राकृतिक तरीकों से पैदा किया जाता है।

इस प्रकार, जैविक खेती और औषधीय पौधों की खेती आपसी संबंध बनाती है जो मानव स्वास्थ्य को बेहतर बनाने में मदद करते हैं। कई पारंपरिक चिकित्सा प्रणालियाँ, जैसे कि आयुर्वेद, पारंपरिक चीनी चिकित्सा, और जनजातीय चिकित्सा प्रथाएँ, औषधीय पौधों पर आधारित हैं। ये पौधे शताब्दियों से विभिन्न बीमारियों के उपचार और संपूर्ण कल्याण के लिए प्रयुक्त होते आए हैं। औषधीय पौधे विभिन्न स्वास्थ्य समस्याओं के लिए प्राकृतिक उपचार प्रदान करते हैं। इनमें एल्कलॉयड्स, फ्लेवोनॉयड्स, टरपीन्स, और आवश्यक तेल जैसे जैविक संयंत्रों में बायोएक्टिव योजक होते हैं, जिनका मानव शरीर पर शुभ प्रभाव हो सकता है, अक्सर संथानिक दवाओं की तुलना में कम हानिकारक प्रभाव के साथ। कई आधुनिक फार्मास्यूटिकल दवाएँ औषधीय पौधों से प्राप्त या प्रेरित होती हैं। उदाहरण के लिए, चिकित्सा में कई अंश हमारे पास रहने वाले पौधों में पाए जाते हैं, जिनसे हमने सिंथेटिक दवाओं को विकसित किया है। अनेक औषधीय पौधे अब खतरे में हो रहे हैं क्योंकि वनस्पति संसाधनों की अव्यवस्थित खाप में कटाई और वनस्पति उपयोग के विपरीत फलस्वरूप उनकी असंतुलितता हो रही है। यहाँ वनस्पति संरक्षण की आवश्यकता होती है ताकि हम आने वाली पीढ़ियों को इनका उपयोग करने का अवसर प्रदान कर सकें। औषधीय पौधों में मौजूद विभिन्न जैव–योजकों का अध्ययन विज्ञानिक अनुसंधान के लिए महत्वपूर्ण होता है। इससे नई दवाइयों की खोज और ड्रग डिजाइन की संभावना होती है। इस प्रकार, औषधीय पौधों का महत्व मानव स्वास्थ्य और विज्ञान में अत्यधिक होता है।

औषधीय और सुगंधित पौधों के लिए जैविक कृषि का महत्व

जैविक कृषि में उपयोग होने वाले प्राकृतिक उर्वरक और तरीकों से उत्पन्न होने वाली औषधीय और सुगंधित पौधों की गुणवत्ता बढ़ती है। यह पौधों में औषधीय और खुशबूदार गुणों को बढ़ावा देता है जिन्हें रोगों के उपचार और खुदरा उत्पादों में उपयोग किया जा सकता है। जैविक कृषि में केवल प्राकृतिक तत्वों का प्रयोग किया जाता है, जिससे पृथ्वी के प्राकृतिक संसाधनों को संरक्षित रखा जा सकता है। इससे जल, ऊर्जा, और मिट्टी के संसाधनों की बचत होती है और प्रदूषण की कमी होती है। जैविक कृषि के तरीकों में कीमिकल खेती की तुलना में कम प्रदूषण और स्वास्थ्य के लिए अधिक सुरक्षित पर्यावरण का उत्थान होता है। इससे औषधीय और सुगंधित पौधों के प्रति मानव स्वास्थ्य की सुरक्षा बढ़ती है। जैविक कृषि में प्राकृतिक रूप से पौधों की सुरक्षा के लिए केमिकल्स की बजाय प्राकृतिक तरीकों का प्रयोग होता है। इससे पौधों के स्वास्थ्य और औषधीय गुण सुरक्षित रहते हैं और उनका उत्पादन बेहतर होता है। जैविक कृषि से प्राप्त उत्पाद में अधिक गुणवत्ता होती है, क्योंकि इसमें कोई हानिकारक केमिकल्स नहीं होते हैं और उत्पादों को प्राकृतिक तरीकों से पैदा किया जाता है। यह उत्पाद स्वास्थ्य के लिए अधिक प्रयोजनीय होते हैं। जैविक कृषि से प्राप्त उत्पाद सांविदानिक रूप से बनाए जाने वाले प्राकृतिक संसाधनों की सुरक्षा में मदद करते हैं, जिससे जीवों के लिए सुरक्षित आवास उपलब्ध रहता है।

आयुर्वेदिक वनस्पति उत्पादक केंद्र (आयुष्मान भारत) में औषधीय वनस्पतियों की जैविक खेती की जाती है, जो आयुर्वेदिक चिकित्सा में उपयोग होती हैं। इससे प्राकृतिक रूप से पौधों की गुणवत्ता में वृद्धि होती है और उत्पादों की मात्रा बढ़ती है। हिमालयन जड़ी–बूटियाँ संरक्षण संघ (Himalayan Medicinal Plants Conservation Society) यह संघ हिमालय क्षेत्र में औषधीय पौधों की जैविक खेती और संरक्षण के लिए काम करता है। यहाँ पर जैविक तरीकों से पौधों की उपयोगिता और संरक्षण का प्रमोट किया जाता है। जैविक आयुर्वेद (Organic Ayurveda) में व्यक्तिगत किसान और उद्यमिता द्वारा जैविक तरीकों से आयुर्वेदिक औषधीय पौधों की खेती की जाती है। यह उनके स्थानीय समुदाय में स्वास्थ्य सेवाओं के लिए स्वास्थ्यप्रद उत्पादों का निर्माण करता है। औषधीय पौधों की उच्च गुणवत्ता वाली खेती (High & Quality Medicinal Plant Farming) में किसान औषधीय पौधों की उच्च गुणवत्ता वाली जैविक खेती करके उन्हें स्थानीय बाजार में सबसे अच्छे उत्पादों की पेशेवरता के साथ प्रस्तुत करते हैं। सुगंधित पौधों की खेती (Aromatic Plant Farming) में किसान सुगंधित पौधों की खेती करके उन्हें इत्र, तेल, और सुगंधों के उत्पादों के रूप में बेचते हैं। इससे उन्हें अधिक मूल्य और आय मिलती है।

निष्कर्ष : जैविक खेती एक विशेष और महत्वपूर्ण दिशा है जो हमारे स्वास्थ्य को सुधारने, आर्थिक सुधारने, और प्राकृतिक संसाधनों की रक्षा करने में मदद कर सकती है। जैविक कृषि के तरीकों का प्रयोग करके हम औषधीय पौधों की गुणवत्ता को बढ़ा सकते हैं, प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण कर सकते हैं, और किसानों को बेहतरीन मूल्य प्राप्त करने में मदद कर सकते हैं। इसके अलावा, जैविक कृषि हमारे पर्यावरण को साफ और स्वस्थ रखने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। इसलिए, जैविक कृषि की प्रणाली का उपयोग करके हम न केवल औषधीय पौधों की प्राकृतिक और अच्छी गुणवत्ता की सुनिश्चित कर सकते हैं, बल्कि हम स्वस्थ और साथ ही पर्यावरण के साथ जीवन बिता सकते हैं। इससे हमारे समाज के स्वास्थ्य और पर्यावरण के लिए एक बेहतर भविष्य की ओर कदम बढ़ता है।